अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-42, संयुक्तांक-18-19, 1-31 मई 2019

वह तोड़ती पत्थर

वह तोड़ती पत्थर;
देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर-
वह तोड़ती पत्थर।

कोई न छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार;
श्याम तन, भर बंधा यौवन,
नत नयन, प्रिय-कर्म-रत मन,
गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार-बार प्रहार -
सामने तरु-मालिका अट्टालिका, प्राकार।

चढ़ रही थी धूप;
गर्मियों के दिन,
दिवा का तमतमाता रूप :

रुई ज्यों जलती हुई भू,
गर्द चिनगीं छा गई,
प्रायः हुई दुपहर
वह तोड़ती पथर।

देखते देखा मुझे तो एक बार
उस भवन की ओर देखा, छिन्नतार;
देखकर कोई नहीं,

देखा मुझे उस दृष्टि से
जो मार खा रोई नहीं,
सजा सहज सितार,
सुनी मैंने वह,
नहीं जो थी सुनी झंकार।

एक क्षण के बाद वह काँपी सुघर,
ढुलक माथे से गिरे सीकर,
लीन होते कर्म में
फिर ज्यों कहा-
'मैं तोड़ती पत्थर।'

-सूर्यकांत त्रिपाठी निराला

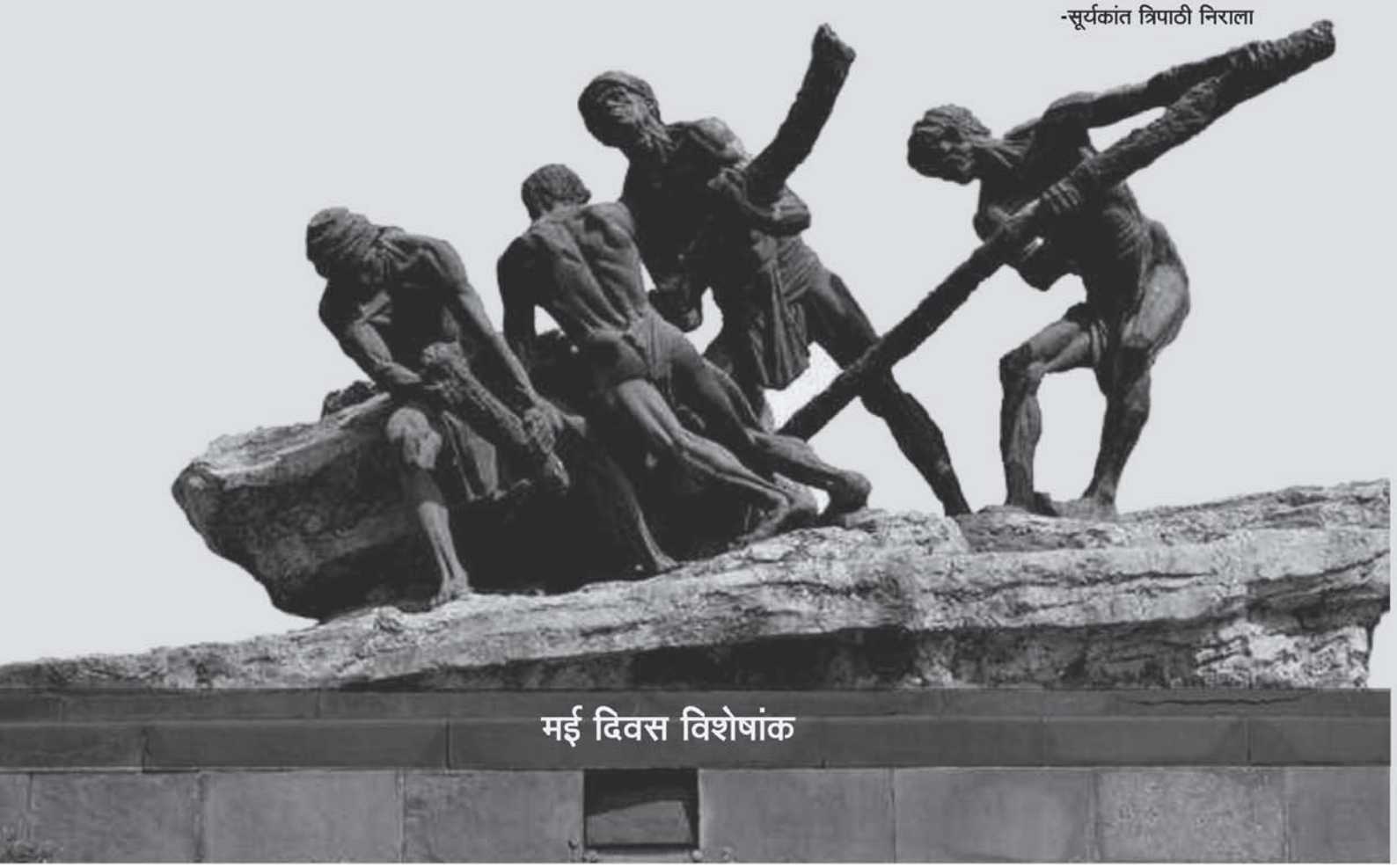

मई दिवस विशेषांक

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 42, संयुक्तांक : 18-19, 1-31 मई 2019

अध्यक्ष
महादेव विद्रोही

संपादक
बिमल कुमार
सहसंपादक
प्रेम प्रकाश
09453219994
संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'
प्रो. सोमनाथ रोडे अरविन्द अंजुम,
रमेश ओझा अशोक मोती

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

एक प्रति	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC Code : UBIN0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. संपादकीय... 2
2. मार्क्स की विशेषता... 3
3. सत्तर साल पहले... 5
4. खेती से पहले खेत... 7
5. मुक्ति के तीसरे चरण पर श्रमिक... 9
6. बेरोजगारी और विषमता से जूझती... 10
7. क्या मजदूर वर्ग दुनिया को बदल... 11
8. ग्रामीण श्रमिकों की समस्या... 13
9. साइकिल रिक्शा... 14
10. वन अधिकार अधिनियम-2006... 15
11. अध्यक्ष की कलम से... 17
12. सर्व सेवा संघ अधिवेशन... 19
13. नार्वे पर्यावरण के मोर्चे पर पहला स्थान... 23
14. सिलिकोसिस एक लाइलाज... 24
15. किसानों को ही 'फसल' बना दिया... 26
16. विकास का छलावा... 28
17. विकास की परिभाषा... 29
18. उपन्यास - 'बा'... 31
19. विधायिका में महिला आरक्षण... 33
20. युद्ध के दुष्परिणाम और बच्चों... 35
21. लोक-विमर्श... 37
22. गतिविधियां एवं समाचार... 38
23. कविता... 40

संपादकीय

श्रमिक–उत्पादन कला से आधुनिक उद्योग में सर्वहारा मजदूर तक

ज्ञानयुक्त परम्परागत समाजों में अपने मूल सिद्धांतों (जो ब्रह्माण्डिक चेतना आश्रित होने थे) को अपनी हर क्रिया से जोड़े रखने की प्रवृति थी। इस कारण, उत्पादन कला भी दो भूमिकाओं को एक साथ सम्पन्न करती थी। एक, जीवन के पोषण व संवर्धन का कार्य अन्योन्याश्रित रूप से मूल सिद्धांतों के पोषण व संवर्धन का भी माध्यम होता था। दूसरा, इसके माध्यम से उत्पादक शिल्पी के 'स्व' की गुणवत्ता प्रकट होती थी। उसकी अन्तरात्मा का सौन्दर्य उसके शिल्प के माध्यम से प्रकट होता था। इसीलिए कहते थे कि बनायी गयी या उत्पादित वस्तु में उत्पादक शिल्पकार का व्यक्तित्व प्रकट होता था। अर्थात् उत्पादन कला एक गुणात्मक कर्म होता था। किन्तु ऐसा तभी संभव था जब उत्पादक शिल्पी एवं प्रकृति में उपलब्ध संसाधन के बीच कोई शोषणकारी व्यवस्था न हो। यानि प्रकृति के साथ उसका सहज, नैसर्गिक व परस्पर पोषणकारी सम्बन्ध हो। इस प्रक्रिया में ज्ञान-विज्ञान का विकास भी, मूल सिद्धांतों की अवहेलना किये बिना होता गया।

आधुनिक पूंजीवादी औद्योगिक प्रणाली में काम करने वाले श्रमिक का केवल श्रम (श्रम जिसका चेतना या अन्तरचेतना से विलगाव हो गया हो) मशीन के साथ युक्त होता है। इस कारण उच्चतर मानवीय चेतना के स्पन्दन का आभास किसी उत्पादन में नहीं होता। और श्रमिक भी धीरे-धीरे स्वयं को श्रम प्रदान करने वाली मशीन के समान बना लेता है। उसके कार्य में भावना का स्पन्दन नहीं होता; श्रम के अतिरिक्त उसके किसी गुण का समावेश, उस उत्पादन क्रिया में नहीं होता। इसी कारण सभी श्रमिकों के श्रम महज श्रम की इकाई बनकर रह जाते हैं। चूंकि उत्पादित वस्तु में श्रमिक के चेतना युक्त गुण की विशेषता प्रकट नहीं होती, उसकी भूमिका महज यांत्रिक हो जाती है, इसलिए उसकी जगह किसी अन्य को रखने से उत्पादित वस्तु की गुणवत्ता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इससे मशीन तुल्य यांत्रिक ढंग से काम करने वाली श्रम की इकाइयों का कई गुणा विस्तार होता जाता है। इसके फलस्वरूप समाज में बुनियादी यांत्रिक बदलाव होता जाता है। उच्च चेतना या अन्तरात्मा युक्त श्रमिकों के समुदाय के स्थान पर यांत्रिक इकाइयों के समान काम करने वाले श्रमिकों के समुच्चय में समाज तब्दील होने लगता है।

यांत्रिकता के व्यापक फैलाव का एक प्रभाव यह पड़ा कि हमारे आसपास का परिवेश कृत्रिम चीजों से पट गया। यह कृत्रिम परिवेश भी अपना विस्तार तभी पा सका, जब हमारी मानसिकता भी कृत्रिम एवं यांत्रिक बनती चली गयी। कृत्रिम/बनावटी मानसिकता के विस्तार के कारण सहज, स्वयंस्फूर्त एवं उच्च चेतना युक्त मानसिकता कम होती गयी। कृत्रिम मानसिकता का निर्माण एक बार गति पकड़ लेता है तो कृत्रिम संस्थाओं का निर्माण सहज हो जाता है। ये कृत्रिम संस्थाएं, धीरे-धीरे स्वाभाविक संस्थाओं को नष्ट करने का कारण बनती जाती हैं। इस प्रक्रिया में स्वाभाविक संस्थाएं जैसे गांव, समुदाय, परिवार आदि धीरे-धीरे कमजोर होते चले गये।

परम्परागत आदर्श समाज रचना में शुद्ध श्रमिक का कोई स्थान नहीं था। भारत में घोर अवनति के दौर में भी कृषि मजदूरों की कोई जाति नहीं थी। कृषक, पशुपालक, जुलाहा, लोहार, चर्मकार, कुम्हार, नाई आदि-आदि जातियां अपने कर्म शिल्प में पारंगत होती थीं। कर्म शिल्प में कर्म कौशल भी था तथा आंतरिक गुण को प्रकट करने की वृत्ति भी थी। उपनिवेशवाद के पूर्व तक खेत में काम करने वाले का स्वरूप भिन्न था। प्राचीन काल में सेवाधारी श्रमिक होते थे, जो मंदिरों, मठों, देवोत्तर सम्पत्तियों एवं राजा के फार्म आदि में कार्य करते थे। कालांतर में, व्यापारिक खेती करने वालों ने काश्तकार या रैयत किसान के माध्यम से खेती शुरू की। उपनिवेशवाद के अन्तर्गत ग्रामोद्योग व हस्तशिल्प के नष्ट होने से तथा बड़ी संख्या में किसानों व काश्तकारों की बेदखली के बाद कृषि मजदूरों की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि हुई, जिनका बदलते समय के साथ उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व खत्म होता चला गया। श्रम की गरिमा तभी स्थापित हो सकेगी, जब श्रमिक को उत्पादन के साधनों पर पुनः स्वामित्व मिले। **–बिमल कुमार**

मार्क्स की विशेषता

जितनी ताकत उतना काम, जितनी जरूरत उतना दाम

❑ दादा धर्माधिकारी

सभी धर्मों में दान का आदेश है। कहा गया है कि जो दुःखी हैं, जो दरिद्र हैं, उनकी सहायता करो, मदद करो। जो कुछ तुम कमाते हो, उसमें से उन्हें दान दो। उनके दुःख का निवारण करने की कोशिश करो। राजाओं से भी कहा गया है कि तुम राज्यों के दान कर दो। बहुत बड़े-बड़े अमीरों से कहा गया है कि तुम सर्वस्व दान कर दो। फलतः किसी ने सर्वजित् यज्ञ किया, किसी ने विश्वजित् यज्ञ किया। इस तरह किसी ने सर्वस्व दान भी दिया। राजा हरिश्चन्द्र ने राज्य भी दिया, लेकिन हरिश्चन्द्र के दान से 'राजा' नाम की संस्था का निराकरण नहीं हुआ। इसी प्रकार बड़े-बड़े सम्पत्तिधारियों ने अपना सर्वस्व दान दिया, लेकिन उसके कारण विश्व से अमीरी और गरीबी के निराकरण का रास्ता नहीं खुला।

दान का आदेश सभी धर्मों में है, गरीबों के साथ सहानुभूति का आदेश सभी धर्मों में है; लेकिन अमीरी और गरीबी के निराकरण का आदेश नहीं है। मार्क्स की अपनी यह बिलकुल नयी बात थी। सबसे पहले उसने यही बात कही कि अमीर लोग यदि यह कहते हैं कि अमीरी और गरीबी नैसर्गिक निमयों से आयी, तो सृष्टि के उसी क्रम में यह भी नियति है कि आगे चलकर अमीरी और गरीबी का निराकरण होने वाला है और वह उनके पुरुषार्थ से होने वाला है, जिन्हें आज हम 'गरीब' कहते हैं। इसलिए जो दलित यह समझते थे कि हमको तो सदा के लिए इन्हीं अमीरों के भरोसे पर जीना पड़ेगा या तो इनकी कृपा पर या इनकी दान-वृत्ति पर निर्भर रहना पड़ेगा, उनमें नये पुरुषार्थ की प्रेरणा पैदा हुई। उनमें नयी आशा पैदा हो गयी।

इस बात को समझाने के लिए मार्क्स ने यह कहा कि ''आज तक का मानव इतिहास ही ऐसा है और इसी ऐतिहासिक घटना-क्रम में यह बात होने वाली है। अमीरी और गरीबी भगवान की बनायी हुई नहीं है। धर्म में उसका विधान नहीं है और यदि धर्म में विधान है, तो जिस धर्म ने अमीरी-गरीबी को मंजूर कर लिया होगा, वह गरीब के लिए तो अफीम की गोली है।'' मार्क्स की यह बात मेरी बुद्धि में बैठ गयी है।

बाइबिल में लिखा है कि गरीब तो हमेशा रहेंगे ही। भगवान ने ही गरीबी बनायी, इसलिए कि हमें दान करने के लिए मौका मिले! मान लीजिये कि मुझे बीमारों की शुश्रूषा करने का शौक है, तो किसी को इसलिए बीमार कर दिया कि मुझे सेवा का मौका मिले!

नये अर्थशास्त्र का निर्माण

मार्क्स ने कहा कि हमें ऐसा समाज बनाना चाहिए कि जिसमें न गरीबी रहेगी, न इस प्रकार के दान के लिए अवसर रहेगा। यानी अमीरी भी नहीं रहेगी। यह मैंने कार्ल मार्क्स की बहुत बड़ी विशेषता मानी है। उसने हमारे अर्थशास्त्र को क्रांति से संबद्ध कर दिया। उससे पहले अर्थशास्त्र था, लेकिन एक ने उसे 'स्वार्थशास्त्र' का नाम दिया और दूसरे ने 'अनर्थशास्त्र' का। मार्क्स ने खुद उसे 'सामाजिक विपत्ति का शास्त्र' कहा था। मार्क्स ने हमारे सामने एक नया अर्थशास्त्र रखा। पर, उसका यह अर्थशास्त्र अर्थशास्त्र हो नहीं सकता था। उस जमाने में अर्थशास्त्र की एक विशिष्ट परिभाषा हो गयी थी। उस परिभाषा के अनुसार मार्क्स ने जो कुछ कहा, उसका समावेश अर्थशास्त्र में हो ही नहीं सकता था। क्योंकि उसकी बातें क्रांतिकारी थीं और जो क्रांतिकारी शास्त्र होता है, उसका पोथी-पंडित हमेशा विरोध करते हैं।

पहले के दो प्रकार के अर्थशास्त्री

मार्क्स ने हमें एक बात यह बतायी कि ऐतिहासिक घटना-क्रम के अनुसार सृष्टि के विकास-क्रम में गरीबी और अमीरी संसार में आयी, दोनों का निराकरण अवश्य होने वाला है, और वह गरीब के पुरुषार्थ से होने वाला है। इसे मैंने 'वर्ग-संघर्ष' कहा था, 'एक वर्ग का संगठन' कहा था। दूसरी एक और बात उसने हमारे सामने रखी, जो अर्थशास्त्र की बात थी। उसने अर्थशास्त्र में कुछ क्रांतिकारी तत्त्वों का समावेश किया। उसके पहले दो तरह के अर्थशास्त्री थे। एक तो थे—पुराण-मतवादी, जिन्हें लोग 'जीर्ण-मतवादी' कहते हैं और कम्युनिस्ट, जिन्हें 'बुजुर्आ' कहते हैं। यानी वे हैं—पूंजीवादी अर्थशास्त्री। उसके बाद के कुछ 'क्लासिकल' अर्थशास्त्री कहलाते हैं। मार्क्स ने उनको अशिष्ट (वलगर) अर्थशास्त्री कहा। ये बहुत स्थूल अर्थशास्त्री हैं। पहले अर्थशास्त्रियों में एडम स्मिथ और रिकार्डो आते हैं। एक सिद्धांत है—श्रममूल्य का। यानी श्रम ही मूल्य है। परिश्रम ही वास्तविक आर्थिक मूल्य है। दूसरा है—'धन वह है, जिसके बदले में कुछ मिल सके।' लेकिन जिसके बदले में कुछ नहीं मिलता है, वह संपत्ति नहीं है। यह कितना अनर्थकारी सिद्धांत था, यह समझाने की आवश्यकता नहीं है। रूसो और टॉल्स्टॉय ने इसका काफी मजाक उड़ाया है। हवा के बदले में कुछ नहीं मिलता, तो हवा का कोई मूल्य नहीं है? पानी अगर मुफ्त मिल जाय, तो उसका कोई मूल्य ही नहीं है? जिसके बदले में कुछ मिलता है, उसी का मूल्य है, विनिमय का यह सिद्धांत बहुत गलत सिद्धांत माना गया। हर वस्तु या तो बिक्री के लिए बनेगी या विनिमय के लिए बनेगी। अर्थात् विनिमय के लिए उत्पादन और विक्रय के लिए उत्पादन, यही इसका परिणाम

निकला। इसे प्रतिमूल्य का अर्थशास्त्र कह लीजिये।

शोषण कैसे होता है?

किसान है, उसका बैल है। बैल किराये की गाड़ी में चलता है। उसे तीन रुपये रोज किराया मिलता है। तीन रुपये रोज में से ढाई रुपये रोज की कम-से-कम मेहनत है। पर बैल को जिन्दा रखने के लिए जितना जरूरी है, सिर्फ उतना ही खिलाता है! निर्वाह के लिए जितना आवश्यक है, उतना ही बैल को देता है और बैल की मेहनत का बचा हुआ सारा फल किसान ले लेता है। यह 'शोषण' कहलाता है।

अर्थशास्त्र में मार्क्स ने 'शोषण' नाम से जिसकी तरफ अंगुलि-निर्देश किया, वह शोषण यही है कि एक आदमी की मेहनत का पूरा बदला उसको नहीं मिलता। इसका परिणाम होता है—100 में से 90 आदमियों के लिए काम ही काम और 100 में से 10 आदमियों के लिए आराम ही आराम! फलतः एक ऐसा समाज बनता है, जिसमें 100 में से 90 आदमियों के लिए काम, एक विवशता, एक आवश्यकता हो जाती है और 10 आदमियों के लिए आराम एकाधिकार हो जाता है। वे विश्राम-जीवी होते हैं, और बाकी लोग श्रम-जीवी होते हैं। इस प्रकार इन दोनों के वर्ग हो जाते हैं। यह अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत मार्क्स का सिद्धांत कहलाता है।

हराम की कमाई

मार्क्स के अर्थशास्त्र ने हमें यहां तक पहुंचाया। यह बहुत बड़ा क्रांतिकारी सिद्धांत था। उससे पूछा गया कि ''क्या इसका मतलब तुम यह करते हो कि मनुष्य जो कुछ कमाता है, उस पर उसका अधिकार नहीं?'' मार्क्स ने जवाब दिया, ''ऐसा मैं कहां कहता हूं? मैं तो यह कहता हूं कि बगैर मेहनत की जो कमाई है, उस पर मनुष्य का अधिकार नहीं''—अर्थात् हलाल की कमाई पर मनुष्य का अधिकार है, हराम की कमाई पर नहीं। मार्क्स की परिभाषा में यह 'अनर्जित सम्पत्ति' कहलाती है। इस पर मनुष्य का अधिकार नहीं है।

उसमें यह भी कहा गया कि ''हम सारी सम्पत्ति का निराकरण नहीं करना चाहते हैं, हम केवल उस सम्पत्ति का निराकरण चाहते हैं, जो मनुष्य ने अपने परिश्रम से प्राप्त नहीं की हैं।

जितनी ताकत, उतना काम

समाजवाद का एक दूसरा भी सिद्धांत है। वह यह कि 'परिश्रम उतना करूं, जितनी मुझमें क्षमता है, और प्रतिमूल्य उतना ही लूं, जितनी मेरी आवश्यकता है।' आसान शब्दों में, 'जितनी ताकत उतना काम, जितनी जरूरत उतना दाम।' यह समाजवाद का एक बहुत बड़ा सूत्र है, जिसे मैं 'क्रांतिकारी अर्थनीति' कहता हूं। अब आप यदि यह कहते हैं, 'जो मेरी मेहनत की कमाई है, उस पर मेरा हक है' तो फिर इस क्रांतिकारी अर्थनीति से यह सिद्धांत ठीक-ठीक मेल नहीं खाता। इसमें से समाजवादी रचना की अन्तर्विरोधी समस्याएं पैदा हुईं।

प्रतिद्वन्द्विता का हल

सबसे पहली समस्या यह पैदा हुई कि 'जितनी जरूरत है, यदि तुम उतने ही दाम दोगे, तो मैं जितनी जरूरत है, उतना ही काम करूंगा। जितनी शक्ति और क्षमता है, उतना काम मैं क्यों करूं?' प्रेरणा का सवाल उठा। रूस में भी आर्थिक प्रयोग हुए और चीन में भी। उनमें से एक बात निकली कि प्रतिद्वन्द्विता नहीं होनी चाहिए। होड़ बुरी चीज है। हरएक को काम के मुताबिक ही दाम दिया जाय, तो बड़ी मुश्किल होगी। यह सब नहीं होना चाहिए। जब यह सवाल आया, तो रास्ता खोजा गया। मैं उसे समन्वय नहीं, समझौता कहता हूं। समझौता और चीज है, समन्वय बिलकुल और चीज है। समन्वय का मतलब समझौता नहीं है।

अगला कदम : श्रम हमारा कर्तव्य

पूंजीवाद में क्या था? कम-से-कम काम, ज्यादा-से-ज्यादा दाम। इससे तो वे आगे चले गये। जितनी ताकत उतना काम, जितनी जरूरत उतना दाम—यह हुआ समाजवाद का सिद्धांत। उसे वे समाजवाद में अभी विशेष चरितार्थ नहीं कर सके। इसलिए समाजवाद के आदर्श से एक कदम पीछे, पूंजीवाद की पद्धति से दो कदम आगे, ऐसे मुकाम पर वे लोग पहुंचे हैं। इसका मुख्य कारण यह था कि उस सिद्धांत में थोड़ी-सी त्रुटि रह गयी थी। उन्होंने सिद्धांत माना कि श्रम तो मूल्य है और अतिरिक्त श्रम का मूल्य जो ले लेता है, वह 'शोषण' करता है। इसलिए शोषण के निराकरण के लिए श्रम के अतिरिक्त मूल्य का परिहरण होना चाहिए। यहां हमारा सुझाव यह है कि श्रम भी प्रतिमूल्य के लिए नहीं होगा। श्रम हमारा कर्तव्य होगा और श्रम का फल सारे समाज का होगा। गांधी ने इसे 'शरीर-श्रम का व्रत' कहा।

उत्पादक परिश्रम सामाजिक मूल्य तब बनेगा, जब परिश्रम मेरा व्रत होगा और परिश्रम के फल पर मेरा अधिकार नहीं होगा, यानी उत्पादक का भी अधिकार नहीं होगा, उस पर सारे समाज का अधिकार होगा। यदि हम श्रम के मूल्य में एक कदम आगे बढ़ाते हैं, तो क्रांतिकारी अर्थनीति और श्रम-मूल्य के सिद्धांत में जो एक विरोध-सा मालूम होता है, उसका हम निराकरण कर सकेंगे।

निष्कर्ष

मार्क्स ने हमें क्या सिखाया? उसने समाज को कौन-सी ऐसी बात दी, जिसे हम 'क्रांतिकारी' कह सकते हैं? उसने हमें सबसे पहली बात यह दी कि गरीबी और अमीरी भगवान की बनायी हुई नहीं है। गरीबी और अमीरी अगर धर्म है, तो उस धर्म को भी हमें नशा मान लेना चाहिए। उस धर्म को हमें मादक मान लेना चाहिए। गरीबी और अमीरी जिस विकास-क्रम में आ गयीं, उसी विकास-क्रम में सृष्टि के अनुसार और ऐतिहासिक घटनाक्रम के अनुसार उनका निराकरण होने वाला है और गरीबों के पुरुषार्थ से होने वाला है। यह एक बहुत बड़ा आशापूर्ण संदेश मार्क्स ने हमें दिया। इस गरीबी और अमीरी के निराकरण के लिए एक नये क्रांतिकारी अर्थशास्त्र का भी उसने उपक्रम किया। मार्क्स ने हमारे सामने इस नये क्रांतिकारी अर्थशास्त्र के दो पहलू रखे। एक तो यह कि मनुष्य की जीविका के साथ उसके जीवन में भी बहुत

बड़ा परिवर्तन होता चला जाता है। दूसरे केवल प्रतिमूल्य के लिए जो संपत्ति होती है, उसे संपत्ति मानना गलत है। श्रम ही मनुष्य की संपत्ति है, क्योंकि श्रम से संपत्ति का निर्माण होता है। श्रम यदि संपत्ति है, तो श्रम का प्रतिमूल्य मनुष्य को मिलना चाहिए।

मार्क्स के और समाजवाद के विचार में एक बात यह भी थी कि जितनी ताकत हो, उतना काम करो और जितनी जरूरत हो, उतना दाम लो। जरूरत के अनुसार ही दाम यदि मुझे लेने हैं, तो मेरी मेहनत का पूरा प्रतिमूल्य मुझे मिलना चाहिए। हम इस सिद्धांत को स्वीकार नहीं कर सकते। तब क्या सिद्धांत होगा? मेहनत मेरा व्रत होगा, मेरा कर्तव्य होगा और मेहनत के प्रतिमूल्य का समाजीकरण हो जायेगा। अब कोई उसे राष्ट्रीयकरण कहेगा, कोई उसे समाजीकरण कहेगा। आप उसे चाहे जो नाम दें, विनोबा जैसा मनुष्य कहेगा कि **'सम्पत्ति सब रघुपति कै आही'** हमारी मेहनत का जो कुछ फल होगा, वह भगवान का समझा जाय, वह रघुपति का समझा जाय—मेहनत करने वाले का भी न समझा जाय। ❑

राजनीतिक जागरुकता के अभाव में

राजनीतिक तौर पर अशिक्षित व्यक्ति सबसे ज्यादा अशिक्षित होता है। वह राजनीतिक प्रवाहों के बारे में न जानता है, न बोलता है, न सुनता है और न ही उनमें भागीदारी करता है। ऐसा व्यक्ति जीवन का मूल्य नहीं समझता। क्योंकि ये जीवन राजनीतिक निर्णयों से प्रभावित होता है। राजनीतिक तौर पर निरक्षर व्यक्ति इतना मूर्ख होता है कि वह यह कहते हुए छाती फुलाता है कि मैं राजनीति से घृणा करता हूं। वह यह नहीं जानता कि उसकी राजनीतिक जागरूकता के अभाव में ही दुनिया में अपराध है, चोरी है, भ्रष्टाचार है, राजनीति की अनैतिकता है और राष्ट्रीय बहुराष्ट्रीय कंपनियों की लूट है। **–बर्तोल्त ब्रेख्त**

सत्तर साल पहले

कौटुम्बिक न्याय सामाजिक अर्थशास्त्र की बुनियाद है!

❑ **काका कालेलकर**

बाजार में जब हम कोई चीज खरीदते हैं तब उसकी कीमत देते हैं। बेचने वाले की बेचने की गरज और खरीदने वाले की खरीदने की उत्कंठा, इन दोनों पर मूल्य निर्भर रहता है। चीज खरीदने वाले कितने हैं और बेचने वाले कितने हैं और कितने प्रमाण में चीज मिलती है, इन सब बातों का उसमें हिसाब होता है।

नतीजा यह होता है कि जिसे चीज की सबसे ज्यादा गरज है, उसे वह चीज नहीं मिलती, बल्कि जो ज्यादा दाम दे सकता है उसको मिलती है। अगर कोई गाड़ी किराये पर लेनी है, एक गरीब बच्चा गाड़ी में सवार होकर अपनी बूढ़ी मां के इलाज के लिए जाना चाहता है और दूसरी कोई धनिक की लड़की अपनी सहेली से मिलने जा रही है, तो गाड़ी उस बेचारे गरीब को नहीं मिलेगी। वह तो गरीबों को निचोड़कर जो धनी हुआ है, ऐसे की लड़की को ही मिलेगी। डिमांड और सप्लाई का कानून नीतिशून्य होता है, कभी कभी अनीतिकारक भी होता है। सामाजिक न्याय का जिसे ख्याल है वह डिमांड और सप्लाई के कानून को तोड़कर भी सामाजिकता का स्वीकार करेगा।

एक ही घर की मोटर जब घर के दो बच्चों को चाहिए तब स्कूल जाने वाले बच्चे का अधिकार विशेष माना जायेगा, खेलने-कूदने जाने वाले बच्चे का अधिकार उससे कम। यह सामाजिक न्याय है अथवा कहिये कि कौटुम्बिक न्याय है। कौटुम्बिक न्याय को ही सामाजिक न्याय बनाना और उसके सामने डिमांड-सप्लाई के कानून को गौण करना, यह है सब धर्मों की सीख। गांधीजी का सामाजिक धर्म भी इसी सिद्धांत को स्वीकार करता है। समाजवाद को भी यही मान्य है। आजकल जो रेशनिंग चल रहा है, उसकी बुनियाद में यही सामाजिक नियम है, हालांकि उसका अमल अक्सर असामाजिक ढंग से होता है।

अब जब चीज का मालिक अपनी चीज को बेचना नहीं चाहता और दूसरे किसी को उसकी निहायत जरूरत हो तो क्या किया जाय? कोई आदमी बीमारी से मृत्यु के किनारे पहुंच गया है और डॉक्टर उसे दवा ही देना नहीं चाहता तो उसे हम बाध्य कर सकते हैं या नहीं? और जब बाध्य करते हैं तब उसे मुंहमांगा दाम देने के लिए बाध्य हैं या नहीं? यह एक बड़ा सवाल है। कुटुम्ब में घर का श्रेष्ठ पुरुष तय करता है कि फलानी चीज फलाने की होते हुए भी दूसरे की गरज ज्यादा है, इसलिए उसे दी जाय। इसे कोई जबर्दस्ती नहीं कहता, क्योंकि कुटुम्ब के सब व्यक्तियों के बीच एक दूसरे के प्रति आत्मीयता होती है।

समाज में सामाजिक नेता यही काम कर सकते हैं, लेकिन समाज के घटकों के अंदर इतनी आत्मीयता नहीं होती है, जितनी एक कुटुम्ब के अंदर होती है, इसलिए वहां पर यह विश्वास नहीं होता है कि प्रेम के न्याय का ही अमल होगा। सामाजिक नेता का अधिकार नैतिक होता है। उसका निर्णय किसी व्यक्ति को मान्य न भी हो, तो उसके सामने हृदय झुक जाता है और उसका पालन करने में व्यक्ति को संतोष रहता है कि हमने अपनी हीन वृत्ति दबा दी और उच्च वृत्ति के वश हो गये।

लोकनियुक्त सरकार के मंत्री भी सामाजिक नेता के स्थान पर ही होते हैं। फर्क इतना ही है कि उनकी आज्ञा के पीछे कानून का बल होता है जो सामाजिक होते हुए भी ऐसा प्रतीत नहीं होता कि वह प्रेममूलक है।

अब हमारे सामने बड़ा सवाल यह है कि सारे समाज की सेवा करने के लिए जो कल-कारखाने चलाये जाते हैं, उनका क्या किया जाय? मुनाफे के लोभ में पूंजीपतियों को चलाने दिया जाय या ऐसा आग्रह रखा जाय कि समाज के हित के लिए ही वे चलाये जायं?

हर एक को अधिकार है कि उसे उसकी मेहनत का फल मिलता रहे। जिसकी जमीन है वह किराया ले सकता है, जिसकी मेहनत है वह अपनी मजदूरी ले सकता है, जिसकी पूंजी है वह अपना सूद ले सकता है। तीनों को उनका मेहनताना देने के बाद बाकी का जो मुनाफा रहता है वह न तो पूंजीपति को मिलना चाहिए, न जमीन के मालिक को, न मजदूर को। मुनाफा समाज की चीज है।

इस सिद्धांत के पालन में एक ही कठिनाई है। मनुष्य की आज की असामाजिक हालत में वही आदमी अपनी पूरी शक्ति लगाकर कल-कारखाना चलाता है, जिसको बेहद मुनाफा हासिल करने की गुंजाइश हो। जब पूंजीपति कोई कारखाना चलाता है तब खर्च कम आता है, नुकसान कम होता है, व्यवस्था अच्छी रहती है और लोगों को माल सस्ते दामों पर मिलता है। अगर वही कारखाना सरकार के द्वारा चलाया जाय तो इसमें खर्च बढ़ता है, चीजों का नुकसान ज्यादा होता है, लोगों को चीजें काफी मात्रा में जब चाहें तब मिलती भी नहीं।

यह बहुत पुरानी दलील है। इसी दलील के आधार पर राज करने का अधिकार भी नीलाम किया जाता था। किसी प्रांत की गवर्नरी किसी को चाहिए तो नीलामी बोलकर वह उसे ले सकता था और माना जाता था कि वही सबसे अच्छा तरीका है। अगर राज सस्ते में और आसानी से चलाना है तो वही नीलाम का तरीका आज भी पसंद करने लायक है। लेकिन लोकहित की दृष्टि से देखा जाय तो मुनाफे वाली असामाजिक वृत्ति को कभी भी स्थान नहीं दिया जाना चाहिए।

समाज हित को मान्य रखकर ही उसकी छत्रछाया के नीचे व्यक्ति को अपने हित की और मुनाफे की बात सोचनी चाहिए। ट्रस्टीशिप का अर्थ यह है कि पूंजीपति को स्वत्व का अधिकार सिर्फ उसकी मेहनत के जितना ही होना चाहिए। बाकी की पूंजी और मुनाफा वह समाज सेवा के लिए ही अपने पास रख सकता है। समाज हमेशा मानता आया है कि जिसने इतना धन कमाया और अपनी योग्यता सिद्ध की, उसी के हाथों उस धन का समाज सेवा के लिए वितरण हो जाय तो अच्छा ही है। अगर गौसेवा के लिए कोई संस्था खड़ी की तो हम गौसेवा के लिए बड़ा दान देने वाले किसी पूंजीपति को ही उस संस्था का प्रधान ट्रस्टी बनाते हैं। ख्याल यह रहता है कि पैसे का अपव्यय नहीं होता। पैसे की कमी रही तो वही दानी अधिक धन ला देगा और व्यवस्था भी वही अच्छी रख सकता है जो अपनी व्यवस्थाशक्ति से इतना धन कमाता है। दानी पूंजीपति भी कहता है कि जो धन मैंने दान में दिया उसका लोभ मैं कैसे कर सकता हूं? अपनी जेब में से उसमें कुछ बढ़ा सकता हूं, उसमें से ले नहीं सकता हूं।

आज जो उसकी निजी संपत्ति मानी जाती है वह सचमुच समाज की मूक सम्मति से उसके पास धरोहर के रूप में है। राष्ट्रहित के लिए अगर कोई जमीन, कारखाना या पूंजी देनी पड़ती है तब प्रतिमूल्य के रूप में वह उसकी बाजारू कीमत नहीं ले सकता। वह तो अधिक से अधिक अपनी जिन्दगी भर की मेहनत का मूल्य मांग सकता है। मुनाफा तो उसका कभी था ही नहीं। मुनाफा तो समाज का है। उस पर अगर व्यक्ति का अधिकार माना जाय तो कारखाने के पुराने, नये सब-के-सब कर्मचारियों का भी उसपर अधिकार है। समाज ही उन सब का प्रतिनिधि है।

प्रतिमूल्य का सिद्धांत तो सही है, लेकिन जिस चीज को समाज लेता है उसका बाजारू मूल्य देने को समाज या सरकार बाध्य नहीं है। मालिक को कितना प्रतिमूल्य दिया जाय, इसका निर्णय न मालिक कर सकता है न किसी अदालत का न्यायाधीश। वह तो पंचों के सुपुर्द होना चाहिए। और पंच भी ऐसे होने चाहिए जो स्वयं पूंजीपति नहीं हैं, सरकारी कर्मचारी नहीं हैं, किसी पक्ष के नेता नहीं हैं बल्कि समस्त जनता के निःस्वार्थ सेवक हैं। अगर किसी समाज में ऐसों की संख्या बहुतायत में नहीं मिलती है तो समझिए उस समाज की सामाजिकता ही नष्ट हो गयी है। *नई दिल्ली, 8-81949 (सर्वोदय से)* ❑

श्रद्धांजलि

असम सर्वोदय मंडल के कार्यकारी अध्यक्ष निरंजन कलिता हमारे बीच नहीं रहे। दिनांक 3 मार्च 2019 को गुवाहाटी में उनका निधन हो गया. उनके जाने से सर्वोदय आंदोलन की अपार क्षति हुई है। उन्होंने असम भूदान ग्रामदान बोर्ड के सचिव एवं नार्थ ईस्ट इंडिया खादी ग्रामोद्योग संघ के सचिव की जिम्मेवारियों को पूरी निष्ठा एवं कुशलता के साथ निभाया। ग्रामस्वराज परिषद, रंगिया के द्वारा खादी ग्रामोद्योग के क्षेत्र में उनका उल्लेखनीय योगदान रहा है। केंद्र की सरकार द्वारा रेमंड कंपनी को खादी बेचने की अनुमति देने से वे चिंतित थे। उनका कहना था कि यह तो खादी का कॉरपोरेटीकरण है।

डिबरूगढ़ में सर्व सेवा संघ ने राष्ट्रीय युवा शिविर आयोजित किया था। उनका इसमें महत्वपूर्ण सहयोग रहा। वे रंगिया में असम प्रदेश सर्वोदय युवा शिविर आयोजित करना चाहते थे ताकि सर्वोदय आंदोलन में युवाओं की भागीदारी बढ़ाई जा सके।

दुःख की इस घड़ी में सर्व सेवा संघ निरंजन भाई को श्रद्धांजलि अर्पित करता है एवं परिवार के सभी लोगों तथा समस्त सर्वोदय कार्यकर्ताओं को हार्दिक संवेदना प्रेषित करता है.

खेती से पहले खेत

❑ बिभाष कुमार श्रीवास्तव

खेती के सम्बन्ध में देश में दो समाचार लगातार चलते रहते हैं, किसानों की आत्महत्या और राजनैतिक दलों द्वारा किसानों के कर्ज की माफी। जहाँ एक ओर किसानों की आत्महत्या देश की आत्मा पर कलंक है तो किसानों की कर्ज माफी की घोषणा उनकी समस्याओं का सरलीकरण है। खेती को कर्ज के माध्यम से देखने की नीति अंग्रेजों के समय में उभरी। ब्रिटिश शासन के दौरान भारत की पूरी कृषि व्यवस्था तहस नहस हो गई। ऊपर से उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में कई बार, लगातार पूरे देश में अकाल की विपदा ने तो भारतीय कृषि की कमर ही तोड़ दी। इस दौरान स्ट्राचे कमीशन और मैकडोनाल्ड कमीशन के नाम से दो-दो कमीशन बैठाए गए। मैकडोनाल्ड कमीशन ने 1901 में अपनी रिपोर्ट सौंपी और उसकी अनुशंसाओं के आधार पर 1904 में कोऑपरेटिव एक्ट पारित किया गया। सहकारिता के माध्यम से खेती को संस्थागत ऋण-पूँजी उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई।

वास्तव में, खेती की समस्याएँ खेत से शुरू होती हैं और बाजार पर जाकर खत्म होती हैं। खेती खेत में होती है, किसी फैक्टरी में नहीं। पौधों को जड़ जमाने के लिए एक माध्यम की जरूरत होती है। सिंधु-गंगा का मैदान दुनिया की सबसे उपजाऊ जमीनों में से एक है। पंजाब से बंगाल तक फैली हुई कृषि-भूमि को गंगा-जमुना और उनकी सैकड़ों सहायक नदियाँ सींचकर सोना उपजाने के क़ाबिल बनाती हैं। लेकिन यह इलाक़ा दशकों से भयानक कुप्रबंधन का शिकार है। उत्तर में तराई का इलाक़ा विशेष है। गर्मी के मौसम में शुरू के दो महीने यह भयानक सूखे की चपेट में रहता है और बारिश के दो महीने नेपाल द्वारा नदियों में पानी छोड़े जाने के कारण बाढ़ग्रस्त रहता है। बुंदेलखण्ड के बीहड़ मशहूर हैं। लेकिन ये बीहड़ और कुछ नहीं, कृषि-भूमि के भीषण कुप्रबंधन का परिणाम है। खेत के ऊपरी सतह की मिट्टी, जिसको बनने में सदियों लगते हैं, हर बारिश के साथ कट कट कर नदियों में बह जाती है। उस बीहड़ की कहानियाँ हमें रोमांचित करती हैं। उन कहानियों पर फिल्में बनती हैं। लेकिन खेत की दुर्दशा पर न कोई साहित्य है न फिल्म है। गंगा-जमुना के ऊपरी बहाव क्षेत्र, जिसमें हिमाचल, उत्तराखंड, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और नेपाल भी आते हैं, में पेड़ों की अंधाधुंध कटाई के कारण मिट्टी कट कर नदियों में आ जाती है। बनारस के बाद से गंगा का मैदान लगभग समतल हो जाता है। तब अपने वतन से उखड़ी मिट्टी सुस्ताने के लिए गंगा और अन्य नदियों की तलहटी में बैठने लगती है। नतीजा यह होता है कि नदियाँ उथली हो जाती हैं और बारिश का पानी जिसे नदियों में ही बहना चाहिए था, खेतों को रौंदने लगता है। इस प्रकार एक तरफ नेपाल से झोंका गया पानी और दूसरी तरफ विकास के नाम पर जंगलों की कटाई के कारण पूरा पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार चार-पाँच महीने बाढ़ग्रस्त रहता है। दुनिया की सर्वोत्तम कृषि भूमि न तो खेत के मालिक के काम की रह जाती है और न ही देश के काम की।

खेती मजबूत हो, इसके लिए पहली जरूरत है कि खेत बचें। आँकड़े बताएँगे कि पश्चिम की मरुभूमि तेजी से गंगा-जमुना के मैदान को लीलने के लिए खड़ी है। मिट्टी का क्षय सदियों से जारी है। जल संरक्षण भूमि के संरक्षण से सीधा जुड़ा है। बारिश का पानी अगर बहे न, बल्कि जमीन में रिसे तो भूमि का क्षय भी रुके और पानी का संरक्षण-भंडारण भी हो। यह कार्य सिविल इंजीनियरिंग का है। लेकिन सिविल इंजीनियरिंग का रिश्ता आमतौर पर रीयल एस्टेट से समझा जाता है। देश के सिविल इंजीनियर खेत के कटाव और जल संरक्षण के लिए क्रांतिकारी काम कर सकते हैं। लेकिन दुर्भाग्य है कि सरकारों के पास इस मसले पर काम करने की कोई पुख्ता योजना नहीं है। पी साईंनाथ ने एक मशहूर किताब लिखी है, 'एवरी बडी लव्स ए गुड ड्रॉट'। मतलब हर कोई चाहता है कि सूखा पड़े और बाढ़ आए। इस किताब को 'तीसरी फसल' के नाम से हिंदी में अनुवाद भी किया गया है। किताब के शीर्षक से ही समझा जा सकता है कि आपदा और भ्रष्टाचार आपस में जुड़े हुए हैं। गाँधीजी कह ही गए हैं कि कोई भी आपदा इंसान के लालच और हवस से पैदा होती है।

खेत से सम्बंधित दूसरी बड़ी समस्या है कृषि भूमि पर उसको जोतने वाले काश्तकारों का मालिकाना हक़ और भू-अभिलेख। इस विषय पर इतिहास खंगालना आवश्यक है कि कैसे काश्तकार सदियों से आज तक अपने हक़ की लड़ाई लड़े जा रहे हैं। बाबर के कार्यकाल में पूरे देश में अराजकता का माहौल था। खेती में जमीनदारों के अपने कानून का बोलबाला था। बाबर के बाद हुमायूँ अपने दोनों कार्यकाल में विजय अभियान और अय्याशी में व्यस्त और मस्त था। शेरशाह सूरी ने खेती की भूमि के उचित सर्वे के आधार पर मानवोचित भू-राजस्व व्यवस्था लागू की। भू-राजस्व बिना बिचैलियों के काश्तकारों से सीधे वसूल करने की व्यवस्था बनाई गई। खेती की जमीनों को काश्तकारों को पट्टे पर उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गयी। फसल नष्ट होने की स्थिति में भू-राजस्व की माफी और काश्तकारों को राजकोष से ऋण दिलाने की व्यवस्था की गई थी। अकबर के लम्बे शासन काल में टोडरमल ने लगान की एक न्यायोचित व्यवस्था स्थापित की, जिससे काश्तकारों को परेशानी न हो। लेकिन जहाँगीर और शाहजहाँ के शासन काल में प्रशासन कमजोर होता गया। शाहजहाँ के शासन काल में दक्कन और गुजरात में भयावह सूखा पड़ा, स्पष्ट है कि खेती बरबादी के कगार पर पहुँच गई होगी।

औरंगजेब का शासन आते आते लगान व्यवस्था तहस नहस हो चुकी थी। आगरा, मथुरा और दिल्ली के आसपास रहने वाले काश्तकारों ने सत्रहवीं शताब्दी के द्वितीयार्ध में मुगल साम्राज्य की भू-राजस्व व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह कर दिया। मुगल युग के दौरान हिंदू हों या मुसलमान, काश्तकार और दस्तकार, बेहद गरीबी में जी रहे थे। अयोग्य, अय्याश और स्वार्थी राजाओं और सूबेदारों, मुगल और हिंदू दोनों, ने ख़जाने का भरपूर दोहन अपने व्यक्तिगत हितों के लिए किया। खाली होते ख़जाने की भरपाई काश्तकारों से लगान वसूल करके की जाती थी। अकबर के शासन के बाद से काश्तकारों पर लगान का भार बढता गया। औरंगजेब की मृत्यु के बाद 'इजरा' यानी लगान वसूलने की नीलामी शुरू कर दी गई। काश्तकारों द्वारा विद्रोह का सिलसिला ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन काल में भी चलता रहा। बंगाल के नदिया और जेसोर जिले के किसान नील की खेती की अन्यायपूर्ण व्यवस्था के खिलाफ संगठित हुए। सन् 1859-60 के दौरान उभरे इस विद्रोह को नील विद्रोह का नाम दिया गया। ईस्ट इंडिया कम्पनी और अंग्रेजी शासन के दौरान देश की सम्पदा की लूट और शोषणकारी लगान व्यवस्था के कारण खेती नष्ट होती गई और अकालों का सिलसिला शुरू हुआ।

सन् 1872 से 1876 के बीच पूर्वी बंगाल के पबना इलाक़े में काश्तकारों ने मनमाना लगान वसूलने और खेत से बेदखली के मुद्दे पर जमीनदारों के विरुद्ध एक शांतिपूर्ण आन्दोलन चलाया। कुछ परगनाओं के किसानों ने अपने क्षेत्र को जमीनदार के नियंत्रण से मुक्त घोषित कर लगान देना भी बन्द कर दिया। इस आन्दोलन के फलस्वरूप बंगाल टेनैन्सी एक्ट 1885 पारित किया गया। पंजाब में भी लगान व्यवस्था और खेती की जमीन पर हक़ को लेकर 1890 से 1900 के बीच विद्रोही आन्दोलन चला। दक्कन में भी पुणे और अहमदनगर में महाजनों के विरुद्ध 1875 में पहले शांतिपूर्ण तथा बाद में हिंसक आन्दोलन चला। वर्ष 1917 के चम्पारण सत्याग्रह से किसान आन्दोलन ने अहिंसक रूप अख्तियार किया। चम्पारण में नील की खेती के सम्बन्ध में शोषणकारी तीनकठिया व्यवस्था के विरुद्ध अहिंसक सत्याग्रह आन्दोलन के दबाव में आकर अंग्रेजी शासन को जाँच कमेटी बनानी पड़ी। अहिंसा का यह क्रम 1918 में गुजरात के खेड़ा में भी दुहराया गया। इस तरह 1921 में मालाबार क्षेत्र के मोपलाम पिल्ला आंदोलन को छोड़ दें तो आजादी के आन्दोलन के साथ साथ किसान आन्दोलन भी अहिंसा की राह पर चल पड़ा।

इतिहास गवाह है कि काश्तकार अपने द्वारा जोती जा रही भूमि पर मालिकाना हक और न्यायोचित लगान के लिए लगातार संघर्षरत रहे किन्तु सफलता हाथ नहीं लगी। आजाद भारत में किसानों को उम्मीद थी कि काश्तकारों के हक़ को महत्व देते हुए कारगर विधाई और प्रशासनिक इंतजाम किए जाएँगे। जमीनदारी उन्मूलन क़ानून बनाए भी गए। जर्नल ऑफ डिफेंस स्टडीज के अप्रैल 2010 के अंक में छपे अपने लेख में रमण दीक्षित ने कहा है कि आजादी के बाद जमीनदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कार्यक्रम शुरू तो किया गया लेकिन यह धीमा और दोषपूर्ण था, जिसका बड़ा फायदा भूमि स्वामियों ने उठाया। पश्चिम बंगाल में ही 1947 से 1969 के बीच तीन प्रतिशत से भी कम खेती योग्य भूमि का काश्तकारों में पुनर्वितरण हो सका। काश्तकारों में व्याप्त भीषण असन्तोष नक्सल आन्दोलन के रूप में सामने आया। इस प्रकार काश्तकार आन्दोलन एक बार फिर हिंसक हो उठा। नक्सल आन्दोलन आज भी जारी है। यह हिंस्र से हिंस्रतर होता चला गया है। अपनी समस्याओं का समाधान न पाकर निराश किसानों ने आत्महत्या का रास्ता अख्तियार करते हुए अपने प्राणों की आहुति देना शुरू किया। एक तरफ नक्सलवाद आत्मघात के रास्ते पर चल रहा है तो दूसरी तरफ एक बड़े क्षेत्र के किसान आत्महन्ता हो चले हैं। अगर अध्ययन किया जाए तो मालूम होगा कि नक्सल आन्दोलन, किसानों की आत्महत्या और भूमि का न्यायोचित बँटवारा न होना आपस में जुड़े हुए हैं। पूरे झारखण्ड राज्य में किसी प्रकार का भू अभिलेख ही नहीं है। खेती आज भी सामन्तवाद की जकड़ में है।

खेतों की तीसरी बड़ी समस्या है, पारिवारिक बँटवारे से जोतों का आकार कम होते जाना। कृषि सम्बंधी चिन्ताओं पर ऋण-पूँजी दृष्टिकोण से अलग एक राजनैतिक धारा भी आजादी के पहले बह रही थी और उसके अगुवा थे डॉक्टर भीमराव अम्बेडकर। उन्होंने इस विषय पर काफी पड़ताल किया है। अम्बेडकर के विचारों के केन्द्र में किसानों के हाथ में लगातार छोटे होते और बिखरे हुए जोत हैं। आम धारणा के अनुसार बिखरे हुए खेत आर्थिक रूप से व्यवहार्य नहीं होते जिसके कारण खेती में सुधार सम्भव नहीं है, जोतों को बड़ा करने और चकबंदी का उपचार सुझाया और प्रैक्टिस किया जाता है। बाबा साहेब एक आर्थिक रूप से सम्भाव्य खेत के आकार की वकालत तो करते हैं लेकिन इस बात से असहमति जताते रहे हैं कि छोटे खेत लाभदायक नहीं हैं। उनके अनुसार छोटी जोत तभी अनुत्पादक होंगे जब किसानों के पास पर्याप्त पूँजी और कैपिटल गुड्स हों और उनका इस्तेमाल खेती में नहीं हो पा रहा हो। उन्होंने आँकड़ों के हिसाब से बताया है कि किसान के पास दोनों की कमी है। ऐसे में खेतों का आकार बढ़ाने से कोई लाभ नही है। जोतों की लाभप्रदता बढ़ाने के लिए उन्होंने पूँजी और कैपिटल गुड्स के इस्तेमाल से सघन खेती की सलाह दी। आज भी खेती किसानों के हाथ में इतना सरप्लस नहीं छोड़ती कि पूँजी निर्माण सम्भव हो और सघन खेती की जा सके। जोतों के एक हद तक बँटवारे के संबन्ध में भी एक राष्ट्रीय नीति होनी चाहिए। किसान की समस्या खेत से शुरू होती है। खेत की मिट्टी बरबाद हो रही है, काश्तकारों का भूमि पर मालिकाना हक़ अभी भी न्यायोचित रूप से तय नहीं किया जा सका है। अगर खेती की इन मूलभूत समस्याओं का हल प्रस्तुत किया जाए तो शायद किसानों को ऋण की भी जरूरत न पड़े, क़र्जमाफी तो बहुत दूर की बात है। ❑

मुक्ति के तीसरे चरण पर श्रमिक

❑ केशव शरण

हर साल की तरह इस साल भी एक मई को मज़दूर दिवस आयेगा। मज़दूरों के लिए समर्पित यह दिवस भारत समेत पूरे विश्व में मनाया जायेगा। भारत के लिए दिलचस्प यह होगा कि इस बार लोकसभा चुनावों की सरगर्मियों के बीच यह दिवस मनाया जाएगा।चुनावी घोषणापत्रों से श्रमिक भले बाहर हों लेकिन इस दिन जो भाषण होंगे उसमें मज़दूर ज़रूर उछाला जायेगा। वह भाषण चाहे दक्षिणपंथी नेता का हो या वामपंथी नेता का, इससे फ़र्क नहीं पड़ता। मज़दूर वह मानव शक्ति है जो अपनी शारीरिक क्षमता से उत्पादन का विशिष्ट कार्य करता है। यह मानव शक्ति एक ओर मशीनों को चलाती है तो दूसरी ओर मशीनों के बग़ैर भी अपने हाड़-मांस को गलाती है। दोनों तरह से इसका मक़सद है उत्पादन और उत्पादन। खेत हों या कल-कारख़ाने या बुनियादी आवश्यकताओं की परिपूर्ति के लिए नये निर्माण या सेवा के कार्य, इस मानव शक्ति के बिना यह सब संभव नहीं है और संभव नहीं है यह सभ्यता जो हमारे जीवन को आसान और सुविधायुक्त करती है। यह अलग बात है कि इस प्रयास में वह जीवन की जटिलताएं भी बढ़ा देती है।

मज़दूर के महत्व से हम परिचित हैं। वह रेल का इंजन बनाने वाले कारख़ाने का श्रमिक हो या राजगीर हो, मोची हो, खेतिहर मज़दूर हो, कुली हो, उसकी आवश्यकता ही उसके महत्व को बताती है। सवाल यह है कि हमारी व्यवस्था उन्हें कितना महत्व देती है और कितना शोषण करती है। इस द्वंद्वात्मक बिन्दु पर ही व्यवस्था का रूप, उसका दृष्टिकोण और विचारधाराओं की लड़ाई से हमारा सामना होता है। श्रमिक राष्ट्र की पूंजी व निर्माण के साधन हैं, इस विचारधारा की आड़ में कभी इनका शोषण भी ज़ायज़ ठहराया गया था। लेकिन मानवता के रक्षक ख़ामोश नहीं रह सकते थे। मज़दूर एक मानव है और एक मानवीय गरिमा के साथ जीने का अधिकार उसका भी है। बिना मानवीय गरिमा और समुचित मानदेय तथा विश्राम के वह तो गुलाम है। किसी समय गुलाम ही मज़दूर के पर्यायवाची थे। गुलामी, अर्ध गुलामी या बंधुआ मज़दूरी से मुक्ति के बाद वे नागरिक की श्रेणी में आये। मानवीय इतिहास में सामंती उत्पीड़न और शोषण से यह मुक्ति एक बड़ी उपलब्धि रही। इसी के साथ औद्योगिक सभ्यता की शुरुआत होती है। मज़दूर अब गुलाम नहीं था लेकिन अपने लाभ के लिए औद्योगिक सभ्यता ने भी उसके शोषण से अपने को अलग नहीं रखा। चौबीस घंटे नहीं तो चौदह घंटे ही सही और मज़दूरी कम से कम। इस कारण अब एक दूसरे चरण का विद्रोह होता है। पसीना बहाने वाले रक्त में सन जाते हैं। समय थम जाता है। व्यवस्था ठहर जाती है। सत्ता हकबका जाती है। फिर वह दिन आता है जब इनके काम के घंटे, इनकी मानवीय आवश्यकताएं, उचित मज़दूरी, अवकाश, कार्य स्थल पर इनकी सुरक्षा आदि मांगें मान ली जाती हैं और एक मई मज़दूर दिवस घोषित होता है। मज़दूर दिवस उनके अधिकारों की लड़ाई की याद दिलाता हुआ उन्हें अपने अधिकारों के प्रति सजग भी करता है। उन्नीसवीं सदी के आखीर में अमेरिका के शिकागो से शुरू होकर यह दिवस समय के साथ दुनिया-भर के मज़दूरों का त्योहार बन गया।

लेकिन पूंजीवादी व्यवस्था असमानता को बनाये रखने वाली एक लालची व्यवस्था है जिसे समाज के शक्तिवान समूह चलाते हैं। यह व्यवस्था जमकर प्राकृतिक संसाधनों को लूटती है और इसके लिए कृषकों और आदिवासियों को विस्थापित करती है। यह पूरे समाज को उपभोक्ता और बाज़ार में बदल देती है। इस तरह से यह पूंजीपतियों के पक्ष में ज़बरदस्त आर्थिक लूट करती है। इस आर्थिक लूट में और इज़ाफ़ा हो इसके लिए वह मज़दूरों का शोषण करना नहीं छोड़ती। कभी भी उन्हें काम से निकाल देना आज उनके पास मज़दूरों के विरुद्ध एक बड़ा हथियार है, जो पूर्ण रूप से क़ानूनी है। इसलिए अन्य तरह के अधिकार प्राप्त किए मज़दूर भी अपने को असुरक्षित पाते हैं। पूंजीवाद की अनगिनत जकड़बंदियों और चालों के कारण मज़दूरों के हाल आज भी नहीं बदले हैं।

एक समय था जब हम एक मई को गांवों और नगरों में लाल झंडों के साथ हज़ारों श्रमिकों व स्त्री-पुरुषों को जुलूस पर जुलूस निकालते देखते थे। इसमें संगठित श्रेत्र के भी मज़दूर होते थे और असंगठित क्षेत्र के भी। श्रम-मूल्यों, शोषण-मुक्ति की विचारधारा वाली और समानता की विचारधारा वाली कम्युनिस्ट पार्टी इनका संघ बनाकर इनके अधिकारों की लड़ाई लड़ती थी। विगत तीन दशकों से यह पार्टी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कमज़ोर पड़ती गयी है और इसी के साथ मज़दूर संघों पर इसकी पकड़ भी। भारत में आज यह नाममात्र की पार्टी है। उसके श्रमिक संगठन बिखर गए हैं या समाप्त हो गये हैं। नहीं तो एक समय उसके श्रमिक संगठनों में न सिर्फ संगठित और असंगठित क्षेत्र के श्रमिक थे बल्कि भारत सरकार के सारे विभाग भी थे।

भारत की कम्युनिस्ट पार्टियों के पतन के बाद आज इस दिन की उत्सवी धूम बेहद फीकी पड़ गई है और कारपोरेट के जाल में श्रमिक एक बार फिर गरिमाहीन, असुरक्षित और शोषण के लिए बना जीव बन गया है। सचमुच, आज श्रमिक मुक्ति के तीसरे चरण पर खड़ा है। आज उसके संघर्ष का क्या रूप हो, जो उसे मानवीय गौरव से युक्त और शोषण के हर प्रकार से मुक्त करे, अत्यंत विचारणीय विषय हो गया है। साम्यवाद समाप्त हो चुका है अथवा उसने अपनी प्रासंगिकता खो दी है। ऐसी स्थिति में गांधीवादियों, लोहियावादियों और अम्बेडकरवादियों से उम्मीद बनती है कि वे अपने आर्थिक दर्शन के अंतर्गत उनकी लड़ाई की रूपरेखा तैयार करें और श्रमिक-मुक्ति की नई राह सुझाएं। यह नये समय और सम्पूर्ण मानव समाज की मांग है। ❑

बेरोजगारी और विषमता से जूझती श्रम शक्ति

❑ भारत डोगरा

सत्रहवीं लोकसभा के लिए जारी चुनाव अभियान में विचार-शून्यता की मौजूदगी थोड़ी कम रही होती तो देश के मौजूदा दौर के सर्वाधिक महत्वपूर्ण संकट बेरोजगारी पर कुछ मंथन होता और नतीजे में शायद हमें रोजगार की कोई तजबीज भी हाथ लग पाती। विकास की वर्तमान अवधारणा और उसके चलते फैलती बेरोजगारी को राजनेताओं ने लगभग भुला-सा दिया है, लेकिन ये ही ऐसे मसले हैं जिनके जबाव से कई संकटों से निजात पाई जा सकती है। प्रस्तुत है, इसी विषय पर प्रकाश डालता यह विवेचनात्मक आलेख। -सं.

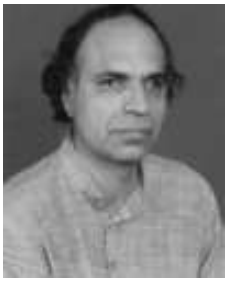

निर्धनता दूर करने का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि सभी के लिए संतोषजनक रोजगार उपलब्ध हों तथा रोजगारों से जुड़ी विभिन्न विषमताओं को कम किया जाए। इस संदर्भ में यदि भारत की स्थिति को देखा जाए तो हमारे देश में रोजगार से जुड़ी विषमताएं अनेक स्तर पर मौजूद हैं व उन्हें दूर करने की दिशा में अभी बहुत कुछ करना शेष हैं। इनमें से अनेक विषमताओं की ओर हाल ही में जारी की गई 'आक्सफैम-इंडिया' की रिपोर्ट ने ध्यान दिलाया है।

'राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संस्थान' के नवीनतम बेरोजगारी सर्वेक्षण (2011-12) ने बताया है कि इस वर्ष देश में 15 से 64 आयु वर्ग के 40.2 करोड़ व्यक्ति रोजगार में थे। इनमें से 29 करोड़ (72 प्रतिशत) पुरुष थे व 11 करोड़ महिलाएं थीं (28 प्रतिशत)। कुल रोजगार करने वालों में से 20.6 करोड़ (51.4 प्रतिशत) स्व-रोजगार में थे व शेष 19.6 करोड़ मजदूरी या वेतन अर्जन कर रहे थे। इन 19.6 करोड़ मजदूरी या वेतन अर्जन करने वालों में से 12.1 करोड़ (62 प्रतिशत) अस्थाई तरह का रोजगार करते थे जबकि मात्र 7.5 करोड़ (38प्रतिशत) ही स्थाई रोजगार में थे। महिला कामगारों में मात्र 30 प्रतिशत स्थाई या वेतन प्राप्त करने वाले रोजगार में थीं।

अस्थाई रोजगारों में स्थाई वेतन वाले रोजगारों की अपेक्षा औसत आय मात्र 36 प्रतिशत पाई गई। इस वर्ष राष्ट्रीय औसत दैनिक मजदूरी 247 रुपए पाई गई पर शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत फर्क पाया गया। शहरी क्षेत्रों में यह मजदूरी 384 रुपए पाई गई जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में यह मात्र 175 रुपए पाई गई। महिलाओं की भागीदारी श्रम-शक्ति में कम ही नहीं पाई गई, अपितु मजदूरी में भी उनसे बहुत अन्याय देखा गया। एक समान कार्य को, एक ही योग्यता से करने पर भी महिलाओं को पुरुषों से 34 प्रतिशत कम वेतन मिलता हुआ पाया गया। वैश्विक स्तर पर यह अंतर बहुत अधिक माना गया है।

'स्टेट ऑफ वर्किंग इंडिया रिपोर्ट-2018' के अनुसार भारत में 82 प्रतिशत पुरुषों और 92 प्रतिशत महिलाओं की मासिक आय 10,000 रुपए प्रतिमाह से कम है जो बहुत चिंताजनक स्थिति है। सातवें वेतन आयोग ने तय किया था कि न्यूनतम मासिक आय 18,000 रुपए होनी चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं के लिए कृषि सबसे बड़ा रोजगार बना हुआ है, पर इस क्षेत्र में भी रोजगार के अवसर कम हो रहे हैं। अनेक दलित महिला मजदूरों की स्थिति बंधुआ मजदूरों जैसी है। शहरी क्षेत्रों में घरेलू-कर्मियों में 81 प्रतिशत महिलाएं व तंबाकू-बीड़ी के कार्य में 77 प्रतिशत महिलाएं हैं। इन दोनों कार्यक्षेत्रों में स्थितियां कई स्तरों पर अन्यायपूर्ण हैं। अनेक तरह की सरकारी नीतियों से महिलाओं की रोजगार की संभावनाओं को सुधारा व बढ़ाया जा सकता है।

अनेक संघर्षों के बाद मजदूरों के हितों की रक्षा के लिए कुछ कानून बने हैं, पर उनका लाभ मजदूरों के कम हिस्से को ही मिल सका है। श्रम कानूनों में जो सुधार इस समय प्रस्तावित हैं, उनमें से अनेक मजदूरों के हितों के विरुद्ध जा सकते हैं। ऐसे में इन पर बहुत सावधानी से विमर्श जरूरी है। विभिन्न उद्योगों में ठेका मजदूरों का प्रचलन रहा है। ठेका मजदूर उन अनेक अधिकारों व सुविधाओं से वंचित होते हैं जिनका लाभ स्थाई कर्मियों को मिलता है।

'राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संस्थान' (एनएसएसओ) के अंतिम दो रोजगार सर्वेक्षणों के आंकड़े बताते हैं कि वर्ष 2004-05 और 2011-12 के बीच प्रति वर्ष स्थाई रोजगारों का सृजन लगभग 25 लाख था। वर्ष 2011-12 व 2016 के बीच स्थाई रोजगारों में नेट वार्षिक वृद्धि लगभग 15 लाख पर सिमट गई। इतना ही नहीं, ऐसे स्थाई कामगारों का हिस्सा श्रम-शक्ति में कम हुआ जिनके पास प्राविडेंट फंड, ग्रेच्युटी, पेंशन, बीमा आदि का सहारा है। लगभग आधे स्थाई मजदूरों को वर्ष 2004-05 में सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध थी। यह प्रतिशत 2011-12 में 45 व वर्ष 2016 में 38 हो गया।

एनएसएसओ के अनुसार केवल एक तिहाई भारतीय मजदूरों के पास कोई लिखित अनुबंध है। 28 प्रतिशत मजदूर ही संगठित मैनुफैक्चरिंग क्षेत्र में है और उनमें से अनेक के रोजगार में सुरक्षा कम हुई है। उद्योगों के वार्षिक सर्वेक्षण के आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2000 और 2013 के बीच संगठित मैनुफैक्चरिंग क्षेत्र की कुल श्रम शक्ति में ठेके के मजदूरों का हिस्सा लगभग दोगुना हो गया है। ठेके के कामगार एक स्थाई रोजगार वाले व्यक्ति से एक तिहाई से भी कम आय अर्जित करते हैं। इससे आय व कार्य की गुणवत्ता में असमानता उत्पन्न होती है। अब तो सरकारी सेवाओं में भी डाक्टरों, नर्सों व अध्यापकों के अनुबंध की शर्तों पर कार्य करने की प्रवृत्ति बढ़ी है। श्रम मंत्रालय के पांचवें वार्षिक 'रोजगार व बेरोजगारों के सर्वेक्षण-2015-16' के

अनुसार 77 प्रतिशत भारतीय परिवारों में नियमित वेतन वाला एक भी सदस्य नहीं पाया गया।

'आक्सफैम' की इस रिपोर्ट के अनुसार भारत में बेरोजगारी एक बड़ा संकट है। इस संकट का उचित समय पर समाधान न हुआ तो इसका समाज की स्थिरता और शान्ति पर प्रतिकूल असर पड़ेगा। एक ओर जो दसियों लाख युवा श्रम-शक्ति में प्रतिवर्ष आ रहे हैं उनके लिए पर्याप्त रोजगार नहीं हैं, दूसरी ओर इन रोजगारों की गुणवत्ता व वेतन अपेक्षा से कहीं कम हैं। लिंग, जाति व धर्म आधारित भेदभावों के कारण भी अनेक युवाओं को रोजगार प्राप्त होने में अतिरिक्त समस्याएं हैं। इस स्थिति से परेशान युवा एक समय के बाद रोजगार की तलाश छोड़ देते हैं। इन कारणों से सरकार द्वारा रोजगार प्राप्ति की सुविधाजनक परिभाषा के बावजूद बेरोजगारी के आंकड़े चिंताजनक हो रहे हैं। यह प्रवृत्ति आगे और बढ़ सकती है।

इस चिंताजनक स्थिति को सुधारने के लिए इस रिपोर्ट ने व्यापक स्तर पर सुधार की संस्तुतियां प्रस्तुत की हैं। विकास में प्राथमिकता श्रम-सघन क्षेत्रों को देनी चाहिए ताकि अधिक रोजगारों का सृजन हो। रोजगारों में वृद्धि समावेशी होनी चाहिए। नए रोजगारों में रोजगार सुरक्षा, बेहतर कार्य स्थितियां, सामाजिक सुरक्षा लाभ व संगठन बनाने का अधिकार उपलब्ध रहना चाहिए। इससे कुल उत्पादकता बढ़ेगी व निवेश पर अधिक लाभ मिलेगा। स्वास्थ्य व शिक्षा में अधिक निवेश से उत्पादकता में सुधार होगा। यह दो क्षेत्र ऐसे हैं जिनमें भविष्य में बहुत रोजगार सृजन भी हो सकता है। कुशलता बढ़ाने पर बेहतर ध्यान देना चाहिए ताकि अन्तर्राष्ट्रीय स्पर्धा में टिक सकें। सरकार को भ्रष्टाचार दूर करना चाहिए। विषमता व बेरोजगारी बढ़ाने वाले अन्य कारकों जैसे 'याराना पूंजीवाद' (क्रोनी कैपिटलिज्म) को नियंत्रित करना चाहिए। कर-नीतियों में विषमता की दर कम होनी चाहिए। कारपोरेट टैक्स में छूट देने का अतिरिक्त उत्साह उचित नहीं है। इस तरह जो अतिरिक्त राजस्व प्राप्त हो उसका उपयोग शिक्षा, स्वास्थ्य व सामाजिक सुरक्षा सुधारने के लिए करना चाहिए। *(सप्रेस)* ❑

क्या मजदूर वर्ग दुनिया को बदल सकता है?

❑ देवन्द्र आर्य

इस आलेख का शीर्षक दरअसल वह सवाल है जिससे जूझते हुए, पेंसलवानिया में जनमे सत्तर पार अर्थशास्त्री, मंथली रिव्यू पत्रिका के एसोसिएट संपादक, ट्रेड यूनियन प्रशिक्षक और लेखक माइकल डी येट्स ने इसी नाम से अपनी ताज़ातरीन पुस्तक लिखी है। यह पुस्तक विस्तार से न केवल मजदूर की परिभाषा को तर्कपूर्ण विस्तार देती है, बल्कि पूंजीवाद के खात्मे के लिए उसकी लड़ाई का ऐतिहासिक वैश्विक आंकलन करते हुए आवश्यक बदलावों की भी चर्चा करती है।

आज जब चरम पूंजीवाद के इस दौर में लगता है कि मजदूर, परम्परागत रूप से मजदूर रहा ही नहीं; मान लिया गया है कि न मिलें उस रूप में मिलें रहीं न मजदूर उन अर्थों में मजदूर, तब यह कहना कि पूंजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंका जा सकता है और वह भी मजदूरों के द्वारा, एक तरह का सिनिकल यूटोपिया लगता है। परंतु माइकल अपनी पुस्तक में यह समझा पाने में सफल हुए हैं कि यह यूटोपिया नहीं, हक़ीक़त है।

पूंजीवादी सत्ता-मीडिया और बुद्धजीवियों ने यह समझ बनाई है कि मजदूर एक वर्ग के रूप में ख़त्म होता जा रहा है और ट्रेड यूनियन आंदोलन एक पिटा-पिटाया मुद्दा है। यह पुस्तक 'पिछले कई दशकों के दौरान मजदूर वर्ग की संरचना में आए बदलाव और उसके नए स्वरूप' से परिचित कराती है और मजदूर वर्ग की एक नयी परिभाषा गढ़ती है।

मजदूरों द्वारा दुनिया बदलने का मतलब है पूंजीवाद का ख़ात्मा। ऐसा तभी सम्भव है जब संघर्ष और बदलाव के विषयों में आर्थिक ही नहीं, सामाजिक ढांचे और पर्यावरण, धर्मों के आडम्बर, पितृसत्ता के संस्कारों को भी शामिल किया जाए। क्योंकि यह सब और इन सब में ज़ारी शोषण तथा अलगाववाद के तरीके ही मिल कर पूंजीवाद का रास्ता प्रशस्त करते हैं। पूंजीवादी व्यवस्था में प्रकृति को पूंजी ने चुरा लिया ताकि श्रम का और अधिक शोषण किया जा सके। यही नहीं, ज़मीन, पानी और यहां तक कि हवा को भी माल में बदल दिया गया, जिसे ख़रीदा और बेचा जा सकता है। ऐसे में दुनिया को बदलने का संघर्ष कई आयामी जटिल हो गया है और बदलाव की मजदूर सेना का कदाचित् विस्तार अत्यंत आवश्यक है।

'सही अर्थों में मजदूर क्या है? क्या हर वह व्यक्ति जो मजदूरी के बदले में काम करता है, वह मजदूर की श्रेणी में आता है? शायद अमूर्त अर्थ में ऐसा ही है। लेकिन दुनिया को बदलने के लिहाज से यह एक बेकार परिभाषा है। पुलिस और जेल रक्षकों की यूनियनें हैं। उन्हें मजदूरी दी जाती है और वे अपने ऊपर वालों का आदेश पालन करते हैं। वे स्पष्टतः मजदूर हैं। लेकिन वे दूसरे कर्मचारियों के अधिकारों के समर्थक नहीं हैं, बल्कि इसके ठीक विपरीत हैं, जैसा कि पूंजीवाद के समूचे इतिहास ने दिखाया है। इससे भी कहीं ज्यादा हास्यास्पद होगा इस श्रेणी में प्रमुख कारपोरेट कर्मियों (वकीलों, अकाउंटेंट्स और ऊंची तनख्वाह वाली योग्यताओं तथा पूंजीवाद के दूसरे समर्थकों सहित) ऊंचे राजनयिक पदों पर आसीन लोगों, शेयर बाजार के कुलीनों इत्यादि को शामिल करना। जो लोग इन पदों पर विराजमान होते हैं वे तनख्वाह भले पाते हों लेकिन वे सभी, जिन्हें हम सामान्य मजदूर वर्ग मानते हैं, उनके हितों के लिए उठाए जाने वाले हर कदम के खिलाफ होते हैं। वे दुनिया को बदलने का इससे अलग कोई तरीका नहीं इस्तेमाल कर सकते कि उनकी नौकरी कायम रहे, उनके अधिकार बढें और उनकी दौलत में इजाफा हो।

इससे उलट, पेशेवर खिलाड़ी, अभिनेता और संगीतकर्मी जिनमें से कुछ को कम से कम अमरीका और दूसरे देशों में बहुत ऊंची तनख्वाह मिलती है, वे बुनियादी बदलाव के सम्भावित सहयोगी हैं। तुलनात्मक रूप से बेहतर तनख्वाह पाने वाले पेशों जैसे- डाक्टर, इंजीनियर और कालेज के प्रोफेसरों का श्रम

भी दिनों-दिन अधिकांश मजदूरों के समान ही होता जा रहा है।

मजदूर के साथ ही जुड़ा शब्द है मजदूरी। मजदूर यानी जिसके पास पेट पालने के लिए अपना श्रम बेचने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। परन्तु श्रम करने-बेचने के एवज में मिले पैसों, मानदेय, तनख्वाह आदि शब्दों से मजदूरों से अलग ध्वनि आती है। हर तरह का रेम्यूनरेशन मजदूरी नहीं होता। इसलिए हर तरह का श्रम भी आपको श्रमिक की श्रेणी में नहीं रख सकता। इस तरह मजदूर का एक सीमित तबका बनता है जो समाज के श्रमशील तबके का अत्यंत छोटा हिस्सा बन कर रह जाता है। ज़ाहिर है कि समाज के बदलने में उस छोटे से तबके की भूमिका भी छोटी ही होगी। माइकल डी येट्स का अध्ययन-विश्लेषण यहीं हमें आगाह करता है कि अगर हम मजदूर वर्ग में शामिल होने के लिए मजदूरी पर काम करने को एक ज़रूरी शर्त मान लें तो करोड़ों लोगों को खो देंगे जिनको मजदूरी तो नहीं मिलती लेकिन वे ऐसे तरीकों से काम करते हैं जिससे पूंजी को फायदा होता है। इसलिए माइकल 'बिना तनख्वाह के उत्पादक श्रम' करने वालों और 'श्रम-बल के उत्पादन के लिए बेहद जरूरी' माहौल बनाने वालों को भी मजदूर वर्ग की श्रेणी में ले आने की सिफारिश करते हैं—

'न केवल बच्चे पैदा करना, बल्कि उनके लालन-पालन का सारा काम, खाने का सामान खरीदना और पकाना, पालन-पोषण, परिवार में मेहमाननवाजी और छुट्टियों के दौरान काम, स्कूल के लिए बच्चों को तैयार करना, मोटर चलाना और ऐसे ही तमाम काम मजदूरी के काम हैं। इन सभी कामों से मालिकों का काफी मुनाफा बढ़ता है क्योंकि उनको बिना एक भी पैसा खर्च किए कम्पनी की जरूरत के लायक, कुशलता में प्रवीण, आज्ञापालक, साक्षर, स्वस्थ और प्रतिस्पर्धी नौजवान मिल जाते हैं। मजदूर वर्ग के बीच से पूरे समय इन कामों को करने वाले करोड़ों लोगों को बाहर कर देना, उन असंख्य लोगों को अपने से दूर करना है जिनकी परेशानियां इतनी ज्यादा हैं कि वे जरूर इस दुनिया को बुनियादी रूप से बदलना चाहेंगे।'

मजदूर जो प्रत्यक्ष हैं, दिख रहे हैं, रोजगार से जुड़े हैं अथवा भले ही बिना तनख्वाह का श्रम कर रहे हैं, मगर तनख्वाह पर काम करने वालों की बैक बोन होते हैं, इन सबके अलावा एक और बड़ी तादाद अप्रत्यक्ष मजदूरों की है जो पूंजीवादी व्यवस्था का बाई प्रोडक्ट हैं, जिन्हें बेरोजगार कहते हैं। यानी मजदूर की परिधि- परिभाषा में तीन लोग आते हैं- तनख्वाह वाले, बिना तनख्वाह वाले और बेरोजगार जिन्हें काम की तलाश है। माइकल इस तीसरी श्रेणी को मजदूरों की आरक्षित सेना कहते हैं, एकतरह के 'सम्भावनाशील मजदूर'। इसलिए वैतनिक, अवैतनिक और सम्भावनाशील मजदूर, ये तीनों मिल कर मजदूर वर्ग की एक बड़ी और व्यापक परिधि बनाते हैं।

लेखक उपरोक्त वर्णित तीन श्रेणियों के अलावा उन्हें भी मजदूर की श्रेणी में रखता है जिन्होंने बेरोजगार होते हुए भी अपने मजदूर बनने की सम्भावना पर विराम दे रखा है। यानी वह बड़ी तादाद जो किन्हीं कारणों से श्रम बाजार से निराश और दूर है, जिन्होंने रोजगार के अवसर कम होने के चलते काम की तलाश बंद कर दी है, यानी 'हतोत्साहित मजदूर'। सम्भावनाशील और हतोत्साहित मजदूर के अलावा दुनिया की एक बड़ी तादाद जिसे मोटी-मोटा किसान की श्रेणी में रख सकते हैं, ऐसी है जो पूंजीवादी विकास के अभिशाप से अपनी जमीन से उजड़ कर कंगाली की ओर जाने को अभिशप्त है और बगावती तेवर अख्तियार कर रही है। ये छोटी जोत वाले किसान, मजदूर वर्ग के 'सम्भावनाशील सहयोगी हैं'। बेशक वे कर्मचारी भी नहीं हैं परंतु अपनी दो जून की रोटी जुटाने के लिए अक्सर मजदूरी करते हैं। उनके बच्चे छोटे-मोटे काम करते हैं और घर पर पैसा भेजते हैं। ऐसे में अगर इस बड़ी तादाद को, जो एक तरफ आत्महत्या भी कर रही है, दूसरी तरफ संघर्ष भी, इन छोटी जोत वाले और भूमिहीन किसानों को भी यदि मजदूर मान लिया जाए तो वास्तविक मजदूर आंदोलन की व्यापकता और बढ़ जाती है। इन किसानों को व्यापक बदलाव में शरीक होने का एहसास दिलाने के लिए उनके संघर्षों को मजदूर वर्ग का हर तरह से समर्थन मिलना चाहिए। तभी किसान-मजदूर की सम्मिलित सेना बन पाएगी।

माइकल भारत का उदाहरण पेश करते हैं—भारत में हर दिन 47 किसान आत्महत्या करते हैं जिसका कारण उनका कर्ज में दबा होना, खराब मौसम, फसलों की गिरती कीमतें और वैश्विक पूंजीपतियों की लूट की हवस है, जो उनकी जमीनों के बड़े-बड़े टुकड़े खरीदते हैं या जबरन कब्जा कर लेते हैं । वे उन जमीनों पर उन्नत तकनीक और कम लागत से व्यावसायिक खेती करते हैं और किसानों की प्रतिस्पर्धी क्षमता को खोखला कर देते हैं। इस तरह श्रम-बल में शामिल या श्रम-बल से बाहर रह रहे, श्रम की आरक्षित सेना में शामिल किसान को मिला कर किसी खास समय में काम कर रहे अरबों लोगों में से यदि 20 प्रतिशत को भी संगठित करने का कोई उपाय निकल आए तो वे निश्चय ही इस दुनिया को बदल देंगे।

शोषण पर आधारित यह दुनिया बदलनी ही होगी। 'अगर यूनियनों, किसान संघों और राजनीतिक संस्थाओं को दुनिया बदलने के लिए एकसाथ काम करना है, अलगाव से मुक्त समाज को अस्तित्व में लाना है, तो ब्राजील के भूमिहीन मजदूर आंदोलन के आदर्श वाक्य को सबके लिए जुलूस का नारा बनाना जरूरी होगा 'कब्जा करो, प्रतिरोध करो, उत्पादन करो।'

माइकल पुराने अध्ययनों, पुरानी मान्यताओं और पुराने तौर-तरीकों से हमें आगाह करते हुए कहते हैं कि—परम्परागत ट्रेड यूनियनें और सामाजिक जनवादी राजनीति आज इसीलिए अप्रासंगिक हैं कि वे कभी रेडिकल सामाजिक रूपांतरण नहीं कर सकतीं। यही हाल मुख्यधारा के पर्यावरणवादी समूहों का भी है, गैर-सरकारी संगठन जो आक्रामक प्रजातियों की तरह फैले हैं तथा तमाम उदारपंथी नारीवादी, जातीय समूह और रेडिकल वकीलों के समूह भी इस काम के लिए अयोग्य हैं। उनके हित पूंजीवादी व्यवस्था के साथ नत्थी हैं ; मुख्य रूप से वे सिर्फ थोड़ा बड़ा कौर चाहते हैं। कौर क्या है और यह कैसे हासिल हो, हर समय यही बातें उनके दिमाग में तैरती रहती हैं।'

तब सवाल यह भी है कि आखिर वह 'रेडकल सामाजिक रूपांतरण' करने वाली फौज कहां से आएगी? कब आएगी? कौन लाएगा? कुछ जवाब माइकल ने अपनी पुस्तक में दिए हैं, बाकी के हमें स्वयं इरादतन ढूंढने होंगे। इस पुस्तक में एक खास बात यह नजर आई कि बहुत सारे प्रश्नों के जवाब ढूंढने में गांधी हमारी मदद कर सकते हैं। आप यह पुस्तक गांधी के 'हिंद स्वराज' के साथ पढ़ें तो चिंताएं ही नहीं समाधान भी कहीं-कहीं साझा लगते हैं। ❑

ग्रामीण श्रमिकों की समस्या

आजादी के बाद समाजवादी ढांचे के समाज की स्थापना के संकल्प के साथ सरकारों द्वारा विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में ग्रामीण श्रमिकों खासकर खेतिहर श्रमिकों की दशा सुधारने के लिए लगातार कार्यक्रम तय किये जाते रहे हैं तथा श्रमिकों के हालात की जानकारी के लिए राष्ट्रीय आयोग भी गठित किये जाते रहे हैं। विश्व व्यापार संगठन से भारत के जुड़ने के बाद भी श्रमिकों के हालात में सुधार की आशा की जा रही थी परन्तु आज भी श्रमिकों की दशा में अपेक्षित परिवर्तन नही देखा जा रहा है और अपना तथा परिजनों का पेट भरने के लिए देश के सबसे बडे राज्य उत्तर प्रदेश तथा बिहार से ग्रामीण मजदूरों का सर्वाधिक पलायन जारी है। 1966 में तत्कालीन प्रधानमंत्री ने लोकसभा में अपने भाषण में कहा था कि हमें ग्रामीण भूमिहीन कृषि मजदूरों पर विशेष विचार करना है। केवल यही क्षेत्र है जो कठिन समय से गुजर रहा है। वह भाषण आज भी मौजूं है।

जहाँ तक बिहार की बात है, यहाँ की करीब 90 फीसदी आबादी आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है, जहां की आजीविका का मुख्य आधार कृषि है। बिहार की 74 फीसदी श्रम शक्ति अपनी जीविका के लिए कृषि पर ही निर्भर करती है। बिहार में पंजाब तथा हरियाणा से भी अधिक उपजाऊ कृषि भूमि है। बिहार में पर्याप्त जलस्रोत भी है। गंगा, कोशी, महानंदा, गंडक, बागमती, कमला, अधवारासमूह, पुनपुन सहित अनेक नदियां हैं, जो हिमालय तथा नेपाल से निकलकर बिहार की धरती को सिंचित करती हैं। इसके बावजूद कृषि का बडा क्षेत्र गैरसिंचित है। बिहार की कृषि आज भी मुख्यतः मानसून पर ही निर्भर करती है। देश का सर्वाधिक बाढ प्रभावित क्षेत्र भी बिहार में ही है। बिहार के 28 जिले बाढ़ से प्रभावित होते हैं। इस प्रकार जनसंख्या के हिसाब से देश की तुलना में बिहार का 56.5 फीसदी हिस्सा बाढ़ प्रभावित क्षेत्र है। इसके अतिरिक्त बिहार में सूखे का भी प्रकोप बढता जा रहा है। कभी-कभी एक ही सीजन मे खेतिहरों को बाढ़ तथा सूखा दोनों का प्रकोप झेलना पड़ता है। कृषि कार्य तथा सूखे से निपटने हेतु खेतिहर निजी नलकूपों पर निर्भर हैं। लेकिन अधिकांश राजकीय नलकूप जर्जर तथा बेकार हैं, कुछ नलकूप तो लगने के बाद चालू ही नहीं हो सके। नदी जल का भी सिंचाई मे थोडा बहुत ही उपयोग होता है।

खेती में पूंजी भी बडी समस्या है, बैंक रसूखदारों की ही मदद करता है। आधुनिकीकरण के नाम पर खेती की लागत बढ़ती जा रही है, वहीं दूसरी ओर कृषकों को कृषि उत्पादों का उचित मूल्य नहीं मिलता। इन परिस्थितियों में परेशान खेतिहरों की आय कम होती है और मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी देने में भी कृषक समर्थ नही होते हैं। इसी का परिणाम है कि ग्रामीण मजदूर अन्यत्र रोज़ी रोटी की खोज में पलायन करने को विवश होते हैं। भारत सरकार के 2011के जनगणना आंकड़ों के अनुसार बिहार में कुल श्रमिकों की संख्या 213.6 लाख थी, जिसमें 44.7 फीसदी कृषि श्रमिक थे।जबकि कुछ शोध आंकड़े बिहार से पलायन करने वाले श्रमिकों की संख्या 4.42 मिलियन बताते हैं। ये आंकड़े यह स्पष्ट करने को काफी हैं कि बिहार से मजदूरों का पलायन बढता जा रहा है। सरकार की मनरेगा योजना मजदूरों को रोजगार उपलब्ध कराने तथा पलायन रोकने में कारगर साबित नही हो रही है। मनरेगा के नाम पर भी निहित स्वार्थी लोगों द्वारा सरकारी धन की लूट की जाती है। स्वाभाविक है कि मजदूर रोज़ी-रोटी की तलाश करेंगे ही। श्रमिकों के पलायन के लिए गरीबी, ऋणग्रस्तता, रोजगार की कमी, बढ़ती लागत, कृषि उत्पादों के उचित दाम नही मिलने, प्राकृतिक आपदा से कृषि की बदहाली, भूमि का विखंडन, ग्रामीण दस्तकारी की समाप्ति, मौसमी रोजगार, जनसंख्या वृद्धि तथा नौजवानों में शहरी आकर्षण मुख्य तत्व है।

ऐसा नही है कि केवल अनपढ़ श्रमिक ही पलायन करते हैं, बल्कि पढ़े लिखे नवयुवक, अर्धकुशल तथा कुशल श्रमिक भी पलायन करते हैं। इतना ही नहीं, अब कम जमीन वाले छोटे किसानों का भी पलायन जारी है। बिहारी मजदूरों का पलायन पहले पंजाब, हरियाणा में कृषि कार्यों के लिए ज्यादा होता था, अब तो बिहारी श्रमिक उत्तर के साथ दक्षिण भारत के राज्यों तक में भी पहुंच रहे हैं।

पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, महाराष्ट्र, गुजरात, केरल, आन्ध्र, कर्नाटक, तमिलनाडु सभी जगह बिहारी मजदूर पलायन कर पहुंच जाते हैं, जहाँ कृषि कार्य के अतिरिक्त निर्माण कार्य, रिक्शा चालन, कपड़ा उद्योग, सुरक्षा गार्ड, घरेलू कार्य, सीमेंट ढुलाई, दुकानों मे सहयोग सहित जीवन यापन के लिए जो कार्य मिल जाय, असुरक्षित तथा अस्वास्थ्यकर वातावरण में भी करने को विवश होते हैं। बिहारी मजदूरों के साथ उपेक्षा तथा तिरस्कार का भाव यह होता है कि कभी महाराष्ट्र तो कभी गुजरात या अन्य भागों में मजदूरों के साथ मारपीट करने तथा भगाने तक की बात देखी जाती है। इसके बावजूद बिहारी पेट भरने को सबकुछ सहने को लाचार हैं। यह भी देखा गया है कि श्रमिक अपने साथ बच्चों को भी रोजगार के लिए राज्य से बाहर ले जाते हैं। ट्रेनों में लदकर देश के विभिन्न भागों में जाना और प्रताड़ित होते रहना इनकी नियति बन गई है। ट्रेनों में इनको ठगे जाने, नशायुक्त सामग्री खिलाकर लूटे जाने की घटनाएं भी घटती रहती हैं। बिहार सरकार का विकास दर का आंकड़ा कितना भी ऊंचा क्यों न हो, परन्तु यथार्थ यही है कि सरकार बिहारी ग्रामीण श्रमिकों को अपने खेतों तथा घरों में रोकने की व्यवस्था नही कर सकी है।

श्रमिक अपने परिवार, बच्चे, बूढ़े, माता-पिता तथा समाज को छोड़कर निरंतर पलायन कर रहे हैं। दूसरे राज्यों तथा महानगरों में पलायन तथा कमाई से उनकी आर्थिक स्थिति में अपेक्षित सुधार भले ही नही हुआ है, परन्तु गरीबी में बाहरी कमाई सहारा जरूर बनी है। कुशल तथा अर्धकुशल मजदूरों को ज्यादा लाभ मिला है। दूसरी ओर श्रमिकों की कमी के चलते हमारी खेती प्रभावित हो रही है। जरूरत है कि सरकार राज्य में खेती- किसानी को मजबूती प्रदान करे, किसान मजबूत होंगे तो न्यूनतम मजदूरी का भुगतान करेंगे। मनरेगा को खेती से जोड़ने तथा औद्योगिक विकास के साथ छोटे व कुटीर उद्योगों का विकास करने से श्रमिकों को मौसमी बेरोजगारी के समय भी वैकल्पिक रोजगार के अवसर मिलेंगे। ग्रामीण रोजगार केन्द्रों की व्यवस्था, सामाजिक सुरक्षा संबंधी सेवाओं की व्यवस्था तथा श्रम सहकारिता संगठन के माध्यम से सार्वजनिक निर्माण कार्य सहित अन्य अवसर उपलब्ध कराकर रोजगार के अवसर उपलब्ध कराये जा सकते हैं, जिससे पलायन को रोकने के साथ-साथ अपने मानव संसाधन का उपयोग प्रदेश की संपन्नता के लिए किया जा सकेगा। **–डॉ. आनन्द किशोर**

अध्यक्ष, जिला सर्वोदय मंडल, सीतामढ़ी ❑

मौके से भेजी गयी रिपोर्ट

साइकिल रिक्शा

सड़क पर घिसटते लोकतंत्र, समता और सामाजिक न्याय

आजकल साइकिल रिक्शे की बात करना विकास की तेज रफ्तार के खिलाफ बात करना तो है ही, यह राष्ट्र विरोधी भी हो सकता है। क्योकि आजकल विकास की तलाश हर कोई, हर तरफ कर रहा है। लेकिन इसी समाज में एक ऐसा समूह भी है जो विगत तीन दशकों से न सिर्फ साइकिल रिक्शे की बात कर रहा है बल्कि उसकी रक्षा और विस्तार के लिए देश के अलग-अलग हिस्सों में अभियान चला रहा है। यह समूह पिछले कई वर्षों से बिहार और झारखण्ड में जन-भागीदारी के माध्यम से साइकिल रिक्शा के लिए नया कानून बनाने के लिए राज्य स्तरीय बहुआयामी कार्यक्रम चला रहा है जिसे समाज के विभिन्न तबकों से आशा के विपरीत समर्थन मिल रहा है। इसकी शुरुआत इन्होने दोनों राज्यों के रिक्शे की समस्या को जानने-समझने के लिए अध्ययन से किया तथा बिहार की राजधानी पटना में 'सड़क पर समता,लोकतंत्र और सामाजिक न्याय' पर बहु-आयामी कार्यक्रम का आयोजन करके एक नयी शुरुआत की।पटना के विभिन्न मंचों पर अभी तक के होते रहे आयोजनों से यह बिल्कुल अलहदा किस्म की पहल थी। इसका आयोजन दिल्ली के एक समूह इंस्टीट्यूट फॉर डेमोक्रेसी एंड सस्टेनेबिलिटी (आईडीएस) ने किया था। कार्यक्रम की शुरुआत 'शहर में गतिशीलता की झलक' के सवाल को दर्शाते हुए एक प्रदर्शनी से की गई। आयोजकों ने अलग-अलग देशों की सड़कों पर हो रहे परिवर्तनों और बहसों को उन स्थानों के चित्रों के माध्यम से लोगों का ध्यान आकर्षित करने की कोशिश की थी। लगभग तीस पैनलों की श्रृंखला में लगाई गई बहुत ही सुसंगठित प्रदर्शनी, अपनी बात बिहार के अलग-अलग शहरों से आये प्रतिभागियों से करीने से कह रही थी। इस प्रदर्शनी की खास बात यह थी कि इसकी हर बात हमारे इतिहास और मन को उकेरती थी।

आईडीएस ने पटना की सड़कों पर चल रहे साइकिल रिक्शे के योगदान और अभी की चुनौतियों पर एक व्यापक अध्ययन किया है। इसकी मुकम्मल रपट भी इस समारोह में जारी की गई। यह रपट पटना शहर के विभिन्न इलाकों के साइकिल रिक्शा चालकों, मिस्त्रियों, मालिकों और सवारियों के साथ इंटरव्यू और सामाजिक सरोकारों से जुड़े समूहों, व्यक्तियों, बुद्धिजीवियों के साथ हुई बातचीत के आधार पर तैयार की गई है ।इस रपट

में रिक्शा और सड़क-परिवहन की नीतियों पर भी प्रकाश डाला गया है। इसमें आंकड़ों का बहुत ही सटीक विश्लेषण किया गया है। कुछ रिक्शा चालकों, मिस्त्रियों और मालिकों की बातें भी कायदे से प्रस्तुत की गई हैं, जो उनके योगदान और परेशानियों को दर्शाती है। इस रपट का लोकार्पण बिहार के परिवहन मंत्री चन्द्रिका राय,पटना के महापौर अफज़ल इमाम, दिल्ली आईआईटी की परिवहन विशेषज्ञ गीतम तिवारी, अन्विता अरोड़ा, मुंबई से शहरी मामलों के रणनीतिकार राजेंद्र भिसे, बिहार के पूर्व मंत्री रामदेव यादव के सान्निध्य में सामूहिक रूप से किया गया, जिसमें काफी तादाद में रिक्शा समूह से जुड़े लोग भी शामिल थे। इस अध्ययन और समारोह के बारे में आयोजकों ने बताया कि पटना में अध्ययन से पूर्व इन्होंने राष्ट्रीय राजधानी परिक्षेत्र के 24 शहरों में ऐसा ही अध्ययन किया, जिसके आधार पर साइकिल रिक्शा के लिए एक मुकम्मल नीति बनाने हेतु एक अभियान चलाया गया। परिणामस्वरूप 2006 में जब केंद्र सरकार ने राष्ट्रीय शहरी परिवहन नीति बनाई तब उसमें साइकिल रिक्शा, साइकिल और पद-पथिकों के सवाल को भी शामिल किया। उस नीति में साफ-साफ कहा गया है कि सरकार लोगों की गतिशीलता को बढ़ायेगी न कि मोटर वाहनों को। पटना शहर ऐतिहासिक शहरों में से एक है। साइकिल रिक्शा यहाँ की हर सड़क पर विराजमान रहा है और लोगों की जिन्दगी में भी। पटना रेलवे स्टेशन के गेट पर पहले रिक्शे का ही साम्राज्य था, लेकिन अब उन्हें वहां से बेदखल कर दिया गया है। आज पटना प्रदूषित शहरों की सूची में अग्रणी है। इसकी एक वजह मोटर वाहनों की बढ़ती संख्या है जो वायु और ध्वनि प्रदूषण तो बढ़ा ही रही है, सड़क-दुर्घटना और सामाजिक तनाव को भी बढ़ा रही है। रिक्शा प्रदूषण-रहित वाहन है और लगभग 8 दशकों से पटना के शहरी समाज से इसका सरोकार रहा है,परन्तु अब धीरे-धीरे दरकिनार होता जा रहा है। सड़कों से इसके अधिकार छिनते चले जा रहे हैं। सामाजिक-राजनैतिक तौर पर इसके पक्ष में उठती आवाजें बंद हो गई हैं। लगता है, साइकिल रिक्शे की सड़क से बेदखली के सवाल पर हर विचारधारा के लोगों के बीच में गठजोड़ बन गया है। यही वजह है कि जिन सड़कों पर समता, लोकतंत्र और सामाजिक न्याय की गूंज उठा करती थी वहां सड़कों पर कारों को चलने की जगह नहीं है तो रिक्शे को कैसे जगह मिलेगी। वे यह भी कहते हुए गुरेज नहीं करते हैं कि आधुनिकता की दौड़ में रिक्शे के लिए कहाँ जगह है। इस बात को थोड़ी दूसरी तरह से परख कर देखें। 2011 की जनगणना के अनुसार पटना में कारों की संख्या चार प्रतिशत है। मगर यही कारें पटना की सड़कों पर राज करती हैं। शहर के सौ प्रतिशत लोग पैदल चलते हैं जिसमें कार वाले लोग भी शामिल हैं। इनके लिए कहीं भी सुरक्षित चलने के रास्ते नहीं हैं। बड़ी संख्या में नागरिक साइकिल से चलते हैं, सरकार भी साइकिल बांटती है और इसे बढ़ावा देती है। लेकिन वे सब अपनी जान जोखिम में डाल कर सड़क पर चलते हैं। साइकिल रिक्शा आम आदमी से लेकर खास आदमी की सवारी है, लेकिन इसकी हालत

बदतर ही होती जा रही है। ऐसी हालत में जो लोग समाज और राजनीति में समता, लोकतंत्र और सामाजिक न्याय की बात करने वाले हैं, वे सड़क पर समान अधिकार की बात नहीं करेंगे तो कौन करेगा?

गीतम तिवारी ने कहा कि विकसित देशों में एक हज़ार में नौ सौ नब्बे लोगों के पास कारें हैं और उनकी जिन्दगी कारों से आने-जाने में ही गुजर जाती है। शारीरिक श्रम नहीं करने की वजह से वे मोटापा, ब्लड प्रेशर और हृदय रोग का शिकार हो रहे हैं। डॉक्टर इन्हें शारीरिक श्रम करने को कहते हैं। ये लोग जिम में जाकर साइकिल चलाते हैं और रैंप पर दौड़ लगाते हैं। क्या हम भी उसी ओर नहीं बढ़ रहे हैं? अगर हमें इससे बचना है तो ऐक्टिव ट्रांसपोर्ट को अपनाना होगा। आज साइकिल रिक्शा यूरोप और अमेरिका में आ रहा है और हम उसे हटा रहे हैं। यह आधुनिकता नहीं है। अन्विता अरोड़ा ने कहा कि जिस समाज में सबसे कमजोर लोग सुरक्षित नहीं हैं, वह समाज तरक्की नहीं कर सकता। जिस सड़क पर एक बूढ़ी औरत और छोटी बच्ची आराम से आ-जा सकती हैं,वही सड़क सब से आधुनिक और मॉडर्न है। राजेंद्र भिसे ने बताया कि रिक्शे की कोई जनगणना नहीं होती है तो फिर इसके लिए योजना कैसे बनेगी? योजना के लिए सबसे पहले संख्या जानना जरूरी है ताकि बजट में उसके लिए प्रावधान किया जा सके। परिचर्चा में शामिल रिक्शा समूह के लोगों ने शहर की सड़कों से हो रही रिक्शे की बेदखली और गैरबराबरी का मुद्दा उठाया और कार्यक्रम की सराहना की। बिहार के परिवहन मंत्री चन्द्रिका राय ने कहा कि हम यह सुनिश्चित करने की कोशिश करेंगे कि इनका हक और अधिकार सुरक्षित रहे। महापौर अफज़ल इमाम ने कहा कि इनके लिए बनाये गए रैनबसेरों से अवैध कब्ज़ा हटाया जायेगा और आप अगर कोई नीति-मसविदा तैयार करते हैं तो हम इसे आगे बढ़ाएंगे।

यह आयोजन एक नयी दिशा और चिंतन की ओर बढ़ने की एक छोटी-सी पहल है। उम्मीद है कि जब बात निकली है तो दूर तलक जाएगी और सड़क पर समता, लोकतंत्र और सामाजिक न्याय के सपने को साकार करने में मददगार बनेगी। **–राजेन्द्र रवि**

जानकारी

वन अधिकार अधिनियम 2006 और सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न फैसले

वन अधिकार अधिनियम (2006), वन संबंधी नियमों का एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है, जो 18 दिसंबर, 2006 को पास हुआ। यह कानून जंगलों में रह रहे लोगों के भूमि तथा प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकार से जुड़ा हुआ है, जिनसे औपनिवेशिक काल से ही उन्हें वंचित किया हुआ था। इसका उद्देश्य जहां एक ओर वन संरक्षण है, वहां दूसरी ओर यह जंगलों में रहने वाले लोगों को उनके साथ सदियों तक हुए अन्याय की भरपाई का भी प्रयास है। यह जंगलों में निवास करने वाले या वनों पर अपनी आजीविका के लिए निर्भर अनुसूचित जनजातियों के अधिकारों की रक्षा करता है। यह उन्हें चार प्रकार के अधिकार प्रदान करता है :

* जंगलों में रहने वाले लोगों तथा जनजातियों को उनके द्वारा उपयोग की जा रही भूमि पर उनको अधिकार प्रदान करता है।
* उन्हें पशु चराने तथा जल संसाधनों के प्रयोग का अधिकार देता है।
* विस्थापन की स्थिति में उनके पुर्नस्थापन का प्रावधान करता है।
* जंगल प्रबंधन में स्थानीय भागीदारी सुनिश्चित करता है।

जंगल में रह रहे लोगों का विस्थापन केवल वन्य जीवन संरक्षण के उद्देश्य के लिए ही किया जा सकता है। यह भी स्थानीय समुदाय की सहमति पर आधारित होना चाहिए। वन संरक्षण अधिनियम (2006) वन भूमि पर गैर कानूनी कब्जों को रोकता है तथा वन संरक्षण के लिए स्थानीय लोगों के विस्थापन को अंतिम विकल्प मानता है। विस्थापन की स्थिति में यह लोगों को पुनर्स्थापन का अधिकार भी प्रदान करता है।

स्वच्छ पर्यावरण संवैधानिक अधिकार

भारत में पर्यावरण संरक्षण की दिशा में न्यायपालिका द्वारा महत्त्वपूर्ण पहल की गई है। जीवन का अधिकार, जिसका उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 21 में है, की सकारात्मक व्याख्या करके न्यायपालिका ने इस अधिकार में ही 'स्वस्थ पर्यावरण के अधिकार' को निहित घोषित किया है। सामाजिक हित, विशेषकर पर्यावरण के संरक्षण के प्रति, न्यायपालिका की वचनबद्धता के कारण ही 'जनहित मुकदमों' का विकास हुआ। भारतीय न्यायपालिका ने 1980 से ही पर्यावरण-हितैषी दृष्टिकोण अपनाया है। न्यायपालिका ने विविध मामलों में निर्णय देते हुए यह स्पष्ट किया है कि गुणवत्तापूर्ण जीवन की यह मूल आवश्यकता है कि मानव स्वच्छ पर्यावरण में जीवन व्यतीत करे। न्यायपालिका ने अनेक ऐसे मामलों की सुनवाई भी की है जिनमें पर्यावरण के लक्ष्यों तथा विकास की आवश्यकताओं में तालमेल बैठाया गया। अधिकांश मामलों में न्यायपालिका का विचार रहा है कि हालांकि विकास के महत्त्व को गौण स्थान नहीं दिया जा सकता, फिर भी पर्यावरण की कीमत पर विकास को तवज्जो नहीं दी जा सकती, भले ही इस प्रक्रिया में अल्पकालीन हानि हो। पर्यावरण संरक्षण पर न्यायपालिका के कुछ महत्त्वपूर्ण निर्णय निम्नलिखित है :

दून की चूना खान का मामला, 1987

इस मामले का संबंध दून घाटी में चूने की खानों द्वारा पर्यावरण को हो रहे गंभीर खतरे से था। सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश दिया कि उन सभी खानों में कार्य बंद कर दिया जाये जहां वे खतरनाक स्थिति में थीं, फिर चाहे ऐसा करने से खान मालिकों और खानकर्मियों को आर्थिक हानि ही क्यों न हो।

श्रीराम गैस रिसाव मामला, 1987

श्रीराम गैस रिसाव मामले में न्यायालय ने आदेश दिया कि उस जोखिम भरे कारखाने को तुरंत बंद किया जाये जिसमें गैस रिसाव के कारण एक कर्मी की मौत हो गयी तथा अन्य लोगों का जीवन संकट में पड़ा। न्यायालय ने कहा कि राज्य के पास अधिकार है कि जोखिम भरी औद्योगिक गतिविधियों पर रोक लगा सके, ताकि जनसाधारण के स्वच्छ पर्यावरण में रहने के अधिकार को सुनिश्चित किया जा सके। न्यायालय ने यह भी कहा कि जीवन के अधिकार में प्रदूषण के जोखिम से पीड़ित व्यक्तियों को मुआवजा मांगने का अधिकार भी निहित है।

गंगा प्रदूषण मामला, 1988

गंगा प्रदूषण मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने चमड़े के उद्योगों को, जो गंगा के तट पर प्रदूषण फैला रहे थे, यह आदेश दिया कि वे या तो प्रदूषण नियंत्रण संयंत्र स्थापित करें या फिर अपने कारखाने बंद कर दें। न्यायालय ने गंगा के किनारे स्थित लगभग 5 हजार उद्यमों को आदेश दिया कि वे बहने वाले मल को स्वच्छ करने वाले संयंत्र लगाएं तथा प्रदूषण को रोकने वाले उपक्रमों की व्यवस्था भी करें।

पत्थर पीसने वालों का मामला, 1992

इस केस में सर्वोच्च न्यायालय ने दिल्ली में पत्थर पीसने वाली इकाइयों को बंद कर, हरियाणा के पत्थर पीसने वाले क्षेत्र में स्थापित करने का आदेश दिया। न्यायालय के अनुसार पर्यावरण की गुणवत्ता इस सीमा तक नष्ट करने की अनुमति नहीं दी जा सकती कि वह उस क्षेत्र में निवास करने वालों के स्वास्थ्य के लिए खतरनाक बन जाये।

पर्यावरण जागरूकता मामला, 1992

इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने देश में पर्यावरणीय शिक्षा और जागरूकता का प्रसार करने के निर्देश दिये। इन उपायों में स्कूलों में कक्षा एक से बारहवीं तक पर्यावरण को अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाने की व्यवस्था, विश्वविद्यालयों में एक विषय के रूप में पर्यावरण शिक्षा का प्रावधान, सिनेमाघरों में पर्यावरण विषय पर संदशों का प्रचार-प्रसार तथा दूरदर्शन एवं रेडियो पर पर्यावरण कार्यक्रमों के प्रसारण शामिल हैं।

दिल्ली वाहन प्रदूषण मामला, 1994

इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने दूरगामी निर्देश देकर केन्द्र सरकार से कहा है कि वह वाहनों द्वारा फैलाये जाने वाले प्रदूषण को रोकने के लिए प्रभावी उपाय करे। इन उपायों में शामिल था सीसा-मुक्त पर्यावरण-हितैषी पेट्रोल का प्रावधान; सार्वजनिक परिवहन के वाहनों को अनिवार्य रूप से सी. एन. जी. ईंधन पर चलाया जाना और दिल्ली की सड़कों पर 15 वर्ष से अधिक पुराने वाहनों के चलाने पर प्रतिबंध।

ताजमहल का मामला, 1997

इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश दिया कि ताजमहल के आसपास 10,400 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में किसी कोयला आधारित उद्योग की अनुमति नहीं होगी। प्रदूषण फैलाने वाले उद्योगों से कहा गया कि वे या तो स्वच्छ ईंधन का प्रयोग करें या फिर संरक्षित क्षेत्र से बाहर अपने कारखाने हस्तांतरित करें। केन्द्र सरकार और राज्य सरकार को निर्देश दिया गया कि ताजमहल के आसपास हरित पट्टी की व्यवस्था करें, और बिना रुकावट के बिजली की आपूर्ति की जाए ताकि डीजल से चलाए जाने वाले जेनरेटरों की आवश्यकता न पड़े।

उपरोक्त मामलों के अलावा जिन अन्य विषयों पर जनहित याचिकाओं के द्वारा न्यायपालिका ने निर्णय किये उनमें शामिल है—नगरों के ठोस मलबे का प्रबंधन, दिल्ली के भूमिगत पानी में होती कमी, कोलकाता में हुगली नदी के साथ स्थापित प्रदूषण फैलाने वाले उद्योगों की बंदी, पशुओं के प्रति दया, जनजातीय लोगों तथा मछुआरों के विशेषाधिकार, हिमालय तथा वनों की पारिस्थितिकी व्यवस्था, पारिस्थितिकी पर्यटन, भूमि के प्रयोग के प्रतिमान तथा विकास योजनाएं इत्यादि।

पर्यावरण संरक्षण की प्रक्रिया में न्यायालय द्वारा दिये गये कुछ महत्त्वपूर्ण मौलिक नियम निम्नलिखित हैं :

* प्रत्येक नागरिक को स्वच्छ पर्यावरण में जीने का मौलिक अधिकार है जो संविधान के अनुच्छेद 21 में दिये गये 'जीवन जीने के अधिकार' में निहित है।
* सरकारी एजेन्सियां पर्यावरणीय कानूनों के प्रति अपने कर्तव्य को पूरा न करने के लिए वित्तीय या कर्मचारियों की कमी का बहाना नहीं दे सकतीं।
* प्रदूषणकर्ता द्वारा अदायगी का सिद्धांत पर्यावरणीय कानून का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है, जिसका तात्पर्य है कि प्रदूषणकर्ता न केवल पर्यावरण की क्षतिपूर्ति देगा, बल्कि प्रदूषण से प्रभावित लोगों को हुई हानि की भी भरपाई करेगा।
* पूर्ण दायित्व के नियम के अनुसार यदि कोई उद्योग किसी ऐसे खतरनाक व्यवसाय में लगा हुआ है जिससे लोगों के स्वास्थ्य तथा सुरक्षा को खतरा है तब उसका यह पूर्ण दायित्व बन जाता है कि वह यह सुनिश्चित करे कि उस कार्य से किसी को किसी प्रकार का संकट न हो। यदि उस कार्य से किसी को हानि पहुंचती है तो वह उद्योग उस हानि की पूर्ति के लिए पूर्णतया उत्तरदायी होगा।
* पूर्व सतर्कता या पूर्व चेतावनी सिद्धांत के अनुसार सरकारी अधिकारियों का यह कर्तव्य है कि वे पर्यावरणीय प्रदूषण के कारणों की पूर्व कल्पना करें व उनसे पर्यावरण की सुरक्षा करें। यह सिद्धांत उद्योगपतियों पर यह उत्तरदायित्व डालता है कि वे यह स्पष्ट करें कि उनके कार्य पर्यावरणीय दृष्टिकोण से हानिकारक नहीं हैं। आर्थिक गतिविधियां लोगों के स्वास्थ्य तथा जीवन की कीमत पर नहीं चल सकती। पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य से किसी भी कीमत पर समझौता नहीं किया जा सकता।

निष्कर्ष

भारत संसार के उन थोड़े से देशों में से एक है, जिनके संविधानों में पर्यावरण का विशेष उल्लेख है। भारत ने पर्यावरणीय कानूनों का व्यापक निर्माण किया है तथा हमारी नीतियां पर्यावरण संरक्षण में भारत की प्राथमिकता दर्शाती हैं। इतने पर भी भारत में पर्यावरण की स्थिति काफी गंभीर बनी हुई है। नाले, नदियां तथा झीलें औद्योगिक कचरे से भरी हुई हैं। दिल्ली में यमुना नदी एक नाला बनकर रह गयी है। वन क्षेत्र में कटाव लगातार बढ़ता जा रहा है जिसका परिणाम हमें भीषण बाढ़ के रूप में स्पष्ट देखने को मिलता है। भारत में जिस प्रकार से पर्यावरण कानूनों को लागू किया जा रहा है उसे देखते हुए लगता है कि इन कानूनों के महत्त्व को समझा ही नहीं गया है। इस दिशा में पर्यावरण नीति (2004) को गंभीरता से लागू करने की आवश्यकता है। पर्यावरण को सुरक्षित करने के प्रयासों में आम जनता की भागीदारी भी सुनिश्चित करने की जरूरत है।

पर्यावरण संरक्षण में न्यायपालिका ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके प्रयासों से स्वच्छ पर्यावरण मौलिक अधिकार का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गया है। पर्यावरण को शैक्षणिक पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग बनाना तथा संचार माध्यमों के द्वारा पर्यावरण के महत्त्व का प्रचार-प्रसार आदि न्यायपालिका के सराहनीय प्रयासों के कारण ही संभव हुए हैं। **–संकलित**

अध्यक्ष की कलम से

दिन खून के हमारे, प्यारे न भूल जाना...

❑ महादेव विद्रोही

दिन खून के हमारे, प्यारे न भूल जाना...

समाचार मिला कि भारत छोड़ो आन्दोलन के सेनानी सूर्यकांत परीख अत्यंत अस्वस्थ हो गये हैं, न तो बोल पाते हैं और न किसी को पहचानते ही हैं। दिनांक 29 मार्च 2019 को नीता जी एवं परिवार के सदस्यों के साथ उनसे मिलने गया। सूर्यकांत भाई बिस्तर पर पड़े हुए थे। मैंने उनके हाथ में हाथ रखा। उन्होंने अपनी पुत्रवधू को बैठाने का इशारा किया। वे बैठे और बोल पड़े, 'सर्व सेवा संघ के प्रमुख आये हैं।' मैं अचंभित था। जो व्यक्ति किसी को पहचान नहीं पाता था और न ही बोल पाता था, अचानक उनके मुंह में आवाज़ कैसे आ गयी!

अहमदाबाद में गुजरात कॉलेज में 10 अगस्त 1942 को अंग्रेज पुलिस की गोली से 18 वर्ष के विनोद किनारीवाला शहीद हुए। बाद में वहां उनका स्मारक बनाया गया। 1947 में इस स्मारक का उद्घाटन लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने किया था। हर वर्ष 9 अगस्त को हम सब इस स्मारक पर इकट्ठे होकर वीर किनारीवाला को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। इस कार्यक्रम में सूर्यकांत भाई सन् '42 का गीत गाते रहे हैं।

सूर्यकांत भाई के मुख से आवाज़ निकलने पर मुझे अत्यन्त खुशी हुई। मैंने उनसे कहा- सूर्यकांत भाई, अगले सप्ताह 9 अगस्त है। आपको वीर किनारीवाला के स्मारक पर बंद गले का जैकेट पहनकर आना है और गीत गाना है। यह सुनकर सूर्यकांत भाई जलियांवाला बाग हत्याकांड के बाद लिखा गया यह गीत गाने लगे –

दिन खून के हमारे, प्यारे न भूल जाना
खुशियों में अपनी हम पर, आंसू बहा के जाना
सैयाद ने हमारे, चुन-चुन कर फूल तोड़े
वीरान इस चमन में, कोई गुल खिला के जाना।
दिन खून के हमारे...
गोली खा के सोये, जलियांवाला बाग में हम
सूनी पड़ी कब्र पर, दिया जला के जाना। दिन
खून के हमारे...

हिन्दू औ' मुस्लिम की, होती है आज होली
बहते हैं एक रंग में, दामन भिंगो के जाना।
दिन खून के हमारे...
कुछ जेल में पड़े हैं, कुछ कब्र में गड़े हैं
दो बूंद आंसू उन पर, प्यारे बहा के जाना।
दिन खून के हमारे...

उनकी आवाज़ दबी हुई थी पर दबी आवाज में भी सन् 42 का यह गीत गा गये। मेरी आंखों में खुशियों के आंसू छलक गये।

फिर उन्होंने पूछा, मुदिता कहां है? मुदिता हमारे साथ ही थी। उसने उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने आशीर्वाद दिया।

उनकी जिजीविषा को देखकर लगता था कि वे कुछ दिनों में ठीक हो जायेंगे। पर 5 अप्रैल को समाचार आया कि वे नहीं रहे। अपने प्यारे स्वतंत्रता सेनानी के निधन से हम मर्माहत हैं। सूर्यकांत भाई अहिंसक क्रांति के आंदोलन में बड़ी जगह घेरते थे। आज उनके न रहने पर हम अपनी ओर से तथा सर्व सेवा संघ की ओर से उनकी श्रद्धा में अपने प्रणाम निवेदित करते हैं।

बिहार सर्वोदय मंडल की बैठक

बिहार सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष कालिका सिंह के निमंत्रण पर दिनांक 5 अप्रैल 2019 को पटना में आयोजित बिहार सर्वोदय मंडल की बैठक में भाग लिया। बैठक में बिहार के विभिन्न जिलों से करीब 50 सर्वोदय कार्यकर्ताओं ने भाग लिया। बैठक में संगठन को सक्रिय करने, लोकसेवकों के नवीनीकरण, हर तीन महीने पर अलग-अलग जिलों में मंडल की बैठक करने, भूदान किसानों को प्रधानमंत्री किसान सम्मान योजना से वंचित होने, मतदाता शिक्षण आदि मुद्दों पर चर्चा हुई। चुनाव सुधार के संदर्भ में निम्न सुझाव आये –

- एक व्यक्ति के एक से अधिक स्थानों से चुनाव लड़ने पर रोक लगायी जाय या दूसरे क्षेत्र का सारा खर्च उम्मीदवार से लिया जाय।
- नोटा को कानूनी मान्यता प्रदान की जाय।
- प्रवासी मज़दूरों को पोस्टल मत देने का अधिकार मिले।
- एक ही व्यक्ति किसी दल का अध्यक्ष, प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री जैसे महत्वपूर्ण पदों पर न हो।
- सभी राजनीतिक दलों के ऑडिट हों।
- विधायकों एवं सांसदों को अपने कार्यकाल के दौरान वेतन, भत्ता आदि बढ़ाने की इच्छा हो तो उसे चुनाव घोषणा पत्र में शामिल करें।

कस्तूरबा की 150वीं जयंती

कस्तूरबा की 150वीं जयंती के सन्दर्भ में हम 9 अप्रैल 2019 को पोरबंदर पहुंचे। हम सबकी इच्छा थी कि पोरबंदर में एक रैली निकले ताकि पोरबंदर के नागरिकों को भी इसकी जानकारी हो सके। जब हमने स्थानीय मित्रों से इसकी चर्चा की तो सभी का कहना था कि अभी चुनाव आचार संहिता लग गयी है इसलिये रैली के लिए अनुमति नहीं मिलेगी। हमारे कार्यक्रम का संबंध चुनाव से नहीं था अतः हमें लगा, अनुमति के लिये प्रयत्न करना ही चाहिये। 10 अप्रैल को हम पोरबंदर के जिलाधिकारी से मिले जो कीर्ति मंदिर ट्रस्ट के अध्यक्ष भी हैं। उन्होंने हमारे आवेदन को उप-जिलाधिकारी को प्रेषित कर दिया। थोड़े ही समय में मौखिक अनुमति मिल गयी। उप-जिलाधिकारी ने कहा, कल सबेरे 9 बजे आपको अनुमति पत्र मिल जायेगा।

मुझे लगा, इसकी जानकारी कीर्ति मंदिर के व्यवस्थापक को भी देनी चाहिए। इस दृष्टि से कलेक्टर ऑफिस से मैं सीधा कीर्ति मंदिर पहुंचा। वहां एक महिला व्यवस्थापक हैं। मैंने उनसे पूछा–कल 11 अप्रैल है। इसके बारे में आपको कुछ मालूम है? उन्होंने अनभिज्ञता प्रकट करते हुए कहा, मेरे पास कोई परिपत्र नहीं आया है। मैंने कहा कल कस्तूरबा की

150वीं जयंती है। उन्होंने कहा, नहीं, मुझे नहीं मालूम। फिर मैंने उन्हें हमारे कार्यक्रमों की जानकारी दी। इसके बाद मैंने पूछा, इस अवसर पर आप कुछ कार्यक्रम करेंगी या नहीं? उन्होंने कहा, नहीं हम कुछ कार्यक्रम नहीं करनेवाले हैं। आपलोग जो कार्यक्रम करेंगे, उसी को हम अपना कार्यक्रम मानते हैं। यह सुनकर मुझे अच्छा नहीं लगा। मैंने कहा, बहन जी, आप कस्तूरबा के कार्यक्रम नहीं करती हैं, इससे पता नहीं आपको शर्म आती है या नहीं, लेकिन मैं तो बहुत शर्मिंदा हूं। फिर जो उन्होंने कहा वह सुनकर मेरा सिर चकराने लगा। उन्होंने कहा, यह गांधी का घर है, कस्तूरबा का नहीं। इसलिए हम यहां सिर्फ गांधी का कार्यक्रम करते हैं, कस्तूरबा का नहीं। कस्तूरबा के घर की व्यवस्था अलग है।

उनका यह जवाब सुनकर राजकोट जिला सर्वोदय मंडल के सुरेश भाई ने कहा कि कस्तूरबा के घर के बारे में कहा जा सकता है कि यह महात्मा गांधी का घर नहीं है पर महात्मा गांधी का घर कस्तूरबा का घर नहीं है, यह कैसे कहा जा सकता है!

इसके बाद मैं बापू का जिस मकान में जन्म हुआ था, वहां गया। यह मकान अभी भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के अंतर्गत है। वहां विभाग के दो कर्मचारी उपस्थित थे। उन्हें भी कस्तूरबा की जयंती संबंध में कोई जानकारी नहीं थी।

बापू के जन्म स्थान के बाद मैं कस्तूरबा के जन्म स्थान पर गया। जैसे ही वहां पहुंचा कस्तूरबा के सामने के घरवाले ने अपने घर के जूठन एवं सब्जियों के छिलके बिना किसी संकोच के सामने फेंक दिये। उन्हें इस बात की कोई चिंता नहीं थी कि यह स्थान राष्ट्रीय धरोहर है और दुनिया भर के लोग यहां दर्शन करने आते हैं।

मैंने कस्तूरबा के घर में प्रवेश किया। इसकी व्यवस्था गुजरात सरकार देखती है। यहां दो जवान लड़के थे। उन्हें कल कस्तूरबा की जयंती है, इसकी जानकारी थी। मैंने इन दोनों नौजवानों को धन्यवाद दिया।

वनाधिकार अधिनियम 2006 संगोष्ठी

सर्व सेवा संघ के रायपुर अधिवेशन के निर्णयानुसार दिनांक 13 फरवरी 2019 के सुप्रीम कोर्ट के फैसले के संबंध में राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित करने तथा सुप्रीम कोर्ट में एक पक्ष बनने आदि विषयों के लिये आदित्य पटनायक के संयोजकत्व में एक समिति गठित की गयी थी। इस समिति की ओर से दिनांक 16 अप्रैल 2019 को दिल्ली में एक आरंभिक गोष्ठी आयोजित की गयी। इसमें सुश्री राधा भट्ट, घनश्याम (झारखंड), गौतम बंदोपाध्याय (छत्तीसगढ़), एडवोकेट बिराज महापात्र, सुरेन्द्र कुमार (एवार्ड), आदित्य पटनायक, महादेव विद्रोही आदि प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया। इस बैठक में कुछ चौंकानेवाले तथ्य सामने आये–

- जिन आदिवासियों/वनवासियों के आवेदन रद्द किये गये हैं, उन्हें इसकी कोई जानकारी नहीं दी गयी। परिणामस्वरुप वे अपील नहीं कर सके।
- वनाधिकार अधिनियम के अंतर्गत प्रावधान है कि ग्रामसभा जिनके आवेदन को अस्वीकृत करती है, उनकी जानकारी ग्रामसभा को दी जाय।

किसी आवेदन को रद्द करने से पहले सब-डिवीजनल कमेटी आवेदक को अपनी बात रखने का पर्याप्त अवसर देगी। सब-डिवीजनल कमेटी आवेदन को पुनर्विचार के लिए वापस ग्रामसभा को भेज सकती है। अगर रद्द किया जाता है तो उसके विस्तृत कारण बतायेगी। आवेदक सब-डिवीजनल कमेटी के निर्णय के विरुद्ध जिला कमेटी में अपील कर सकता/सकती है।

- प्राप्त आवेदनों पर ग्रामसभा में विचार किया जाना था पर अधिकांश गांव में ग्रामसभा हुई ही नहीं। सिर्फ खानापूर्ति करने के लिए गांव के कुछ लोगों के हस्ताक्षर कार्यवाही पुस्तिका में करा लिये गये।
- 30.4.2018 तक कुछ राज्यों की स्थिति का विवरण ऊपर दी गयी तालिका में उल्लिखित है।

सुप्रीम कोर्ट ने दिनांक 28 फरवरी 2019 को अपने 13 फरवरी 2019 के फैसले में राज्य सरकारों को आवेदनों के रद्द किये जाने तथा इसकी प्रक्रिया के बारे में शपथ पत्र प्रस्तुत करने, 13 फरवरी 2019 के आदेश को स्थगित करने तथा भारतीय वनों के अवैध कब्जों का सेटेलाइट सर्वेक्षण करने को कहा है।

हम इस विषय पर वकीलों से सलाह मशविरा कर रहे हैं। आनेवाले दिनों में हमारा एक प्रतिनिधि मंडल भारत के राष्ट्रपति से मिलेगा तथा दिल्ली के जंतर-मंतर पर धरना होगा। ❑

भूमि के मालिकाना हक के लिए 42 लाख, 20 हजार आवेदन किये गये, जिसमें से 19 लाख 4 हजार आवेदन रद्द कर दिये गये। इसके राज्यवार विवरण इस प्रकार हैं-

राज्य	कुल प्राप्त आवेदन	स्वीकृत आवेदन	अस्वीकृत आवेदन	स्वीकृति का प्रतिशत
आन्ध्र प्रदेश	1,74,480	93,130	66,351	53.38%
बिहार	8,022	121	4,215	1.51%
छत्तीसगढ़	8,87,665	4,16,359	4,62,403	46.90%
गुजरात	1,90,056	87,215	64,769	45.89%
झारखंड	1,09,030	60.143	29,521	55.16%
कर्नाटक	2,81,349	16,073	1,80,956	5.71%
केरल	37,535	24,599	7,899	65.54%
मध्य प्रदेश	6,17,090	2,49,331	3,62,671	40.40%
महाराष्ट्र	3,64,358	1,12,646	2,31,856	30.92%
ओड़िशा	4,15,319	4,21,779	1,50,524	67.71%
राजस्थान	74,159	37,409	35,912	50.44%
तमिलनाड	35,105	4,022	8,861	11.46%
तेलंगाना	1,86,679	94,360	83,757	50.55%
त्रिपुरा	2,00,635	1,27,804	58,477	63.34%
उत्तर प्रदेश	93,644	18,555	74,945	19.81%
पश्चिम बंगाल	1,42,081	45,130	96,587	31.76%

जयजगत!
सर्व सेवा संघ का 87वां अधिवेशन सम्पन्न

सर्व सेवा संघ का 87वां अधिवेशन गत 12-13 मार्च 2019 को रायपुर (छत्तीसगढ़) में सम्पन्न हुआ। उद्घाटन से लेकर समापन तक कुल पांच सत्रों में विभाजित अधिवेशन देश के सामने उपस्थित कई

महत्त्वपूर्ण ज्वलंत समस्याओं पर विमर्श का गवाह बना। वहीं देशभर से आये विशिष्ट अतिथियों, अभ्यागतों, विषय विशेषज्ञों और लगभग एक हजार लोकसेवकों तथा सर्वोदय मित्रों का संगम भी बना। छत्तीसगढ़ में आयोजित होने के कारण सहज ही आदिवासियों के सामने दरपेश जल, जंगल व जमीन का मुद्दा अधिवेशन का केन्द्रीय विमर्श बना। सर्व सेवा संघ अधिवेशनों की स्थापित परंपरा के मुताबिक एक पूरा सत्र हमारे प्रदेश सर्वोदय मंडलों की रिपोर्टों को समर्पित रहा। वहीं एक पूरा सत्र गांधी-150 वर्ष की चुनौतियों पर भी चर्चा हुई।

रायपुर स्थित रामस्वरूप निरंजन धर्मशाला में आयोजित इस अधिवेशन के पहले सत्र का उद्घाटन छत्तीसगढ़ विधानसभा के अध्यक्ष चरणदास महंत ने किया।

चरणदास महंत : मैं अपने आपको आपके बीच पाकर सौभाग्यशाली समझ रहा हूं। आज दांडी यात्रा दिवस है। गांधीजी के कई रास्ते हैं, हमें उन रास्तों पर चलना है। छत्तीसगढ़ सरकार अपने को गांधीजी के प्रति समर्पित रखना चाहती है। इसीलिए हम नक्सलियों से भी बातचीत के सहारे समाधान निकालेंगे। शांति की स्थापना ही हमारा अंतिम उद्देश्य है। गांधी की जरूरत आज भारत ही नहीं समूचे विश्व को है। उन्होंने कहा कि आने वाले समय में हम ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने का प्रयास करेंगे ताकि आम आदमी तक लाभ पहुंचे। छत्तीसगढ़ सरकार इस दिशा में गंभीर प्रयास कर रही है।

उद्घाटन सत्र के तुरंत बाद 'गांधी-150 वर्ष की चुनौतियां' की चर्चा आरंभ हुई। इस सत्र के मुख्य अतिथि विधानसभा अध्यक्ष चरणदास महंत पूरी चर्चा के दौरान उपस्थित रहे।

एस. एन. सुब्बाराव : हम लोगों के लिये 2 अक्तूबर, 30 जनवरी तो महत्व रखते ही है। 12 मार्च 1930 को महात्मा गांधी साबरमती आश्रम से चल पड़े थे दांडी यात्रा के लिये। आज ऐसे महान दिवस पर हम मिले है। साथ में गांधी-150 भी मना रहे है। हम लोगों को सोचना चाहिये कि सबसे अधिक महत्व की बात क्या है।

1945 में किसी को कल्पना नहीं थी कि भारत का टुकडा होगा लेकिन टुकडा दो साल बाद ही हो गया। हमको लगता है कि भारत की एकता सुदृढ है लेकिन आदमी-आदमी की जान ले लेता है। भारत की एकता के लिये ऐसी घटनाएं बहुत खतरनाक हैं। हम सब एक बनकर ही आज यूनाइटेड नेशन में 193 देश है। 193 देशों में भारत ही एक ऐसा देश है जहां चार धर्म पैदा हुए। सनातन धर्म, हिन्दू धर्म, जैन धर्म एवं बौद्ध धर्म। जितने भी धर्म हुए, पूर्व में हुए, बाद में पश्चिम में गये। मैं जवानों को बार-बार याद दिलाता हूं। भारत के पासपोर्ट पर क्या लिखा है, रिपब्लिक ऑफ इंडिया। पाकिस्तान के पासपोर्ट पर लिखा है इस्लामिक रिपब्लिक ऑफ पाकिस्तान। लेकिन ऐसे इस्लामिक देश के भी टुकडे हो गये। पाकिस्तान के प्रधानमंत्री भुट्टो ने एक किताब लिखी। उसमें वे लिखते हैं कि पाकिस्तान की तुलना में भारत विविधताओं से भरा हुआ देश है। मैं भुट्टो साहब से मिलता तो कहता कि सिर्फ पाकिस्तान नहीं, दुनिया के किसी भी देश से तुलना करो तो भारत भिन्नता से भरा हुआ देश है। एक देश से मैं जरूर तुलना करता था, उसका नाम सोवियत रशिया है। लेकिन आज सोवियत रशिया है ही नहीं, वह भी टुकड़े-टुकड़े हो गया। इंडोनेशिया के बाद सबसे ज्यादा मुसलमान भारत में रहते हैं और मेघालय, नगालैंड, मिजोरम में 90 प्रतिशत इसाई रहते हैं। हमारा देश बाकी देशों से अद्भुत हैं, ये हमारा राष्ट्रीय वैभव है।

गांधी 150 में हमको नया भारत बनाना है। हमारे अंदर शक्तिदायक विचार है। वह

विचार लेकर हम आगे बढ़ेंगे। हिन्दुस्तान को गांधी की कल्पना का हिन्दुस्तान बनायेंगे। 1920 में जब तिलक चले गये तो लोग नेता खोज रहे थे, गांधी मिल गये। नागपुर में उन्होंने संदेश दिया था कि आज़ादी का मतलब सिर्फ झंडा बदलना नहीं है। आज़ादी का मतलब सिर्फ अंग्रेजों को भगाना नहीं है। आज़ादी का मतलब प्रत्येक भारतीय को आदर्श बनाना है। कम-से-कम चार बात होनी चाहिये। एक हिंसा मुक्त भारत होना चाहिये। दूसरा अछूत शब्द नहीं होना चाहिये। तीसरा नशामुक्त भारत होना चाहिये। चौथा ग्रामोद्योग होना चाहिए। आज अगर गांधी होते तो भ्रष्टाचार मुक्त, घूसखोरी मुक्त भारत का काम हाथ में लेते। आज शांति यात्रा के बाद हम सब प्रार्थना करेंगे और गांधीजी का संदेश सब तरफ ले जायेंगे।

1920 में जब तिलक चले गये तो लोग नेता खोज रहे थे, गांधी मिल गये। नागपुर में उन्होंने संदेश दिया था कि आज़ादी का मतलब सिर्फ झंडा बदलना नहीं है। आज़ादी का मतलब सिर्फ अंग्रेजों को भगाना नहीं है। आज़ादी का मतलब प्रत्येक भारतीय को आदर्श बनाना है। कम-से-कम चार बात होनी चाहिये। एक हिंसा मुक्त भारत होना चाहिये। दूसरा अछूत शब्द नहीं होना चाहिये। तीसरा नशामुक्त भारत होना चाहिये। चौथा ग्रामोद्योग होना चाहिए। आज अगर गांधी होते तो भ्रष्टाचार मुक्त, घूसखोरी मुक्त भारत का काम हाथ में लेते।

महादेव विद्रोही : अभी भाईजी ने 12 मार्च 1930 की याद दिलाई। गांधीजी ने कहा था कि देश में जो नमक बनता है उसपर अंग्रेजों ने टैक्स लगा दिया है और इतना ज्यादा लगाया है कि मुश्किल हो गयी है। तो नमक बनाकर अंग्रेजों के इस कानून को हम तोड़ेंगे। 12 मार्च 1930 को महात्मा गांधी साबरमती आश्रम से यह कहकर निकले थे कि जब तक देश आज़ाद नहीं होता, मैं साबरमती लौटकर नहीं आऊंगा। उसके बाद वे साबरमती कभी लौट के नहीं गये। गांधीजी ने जब कहा कि नमक बनाओ, तो मोतीलाल नेहरु ने गांधीजी को पत्र लिखा कि नमक बनाने से भी कोई देश आज़ाद होता है क्या? गांधीजी ने मोतीलालजी को एक लाइन का उत्तर भेजा—'बनाकर देखो'। इलाहाबाद में नमक बनाने का कार्यक्रम हो रहा था और मोतीलाल नेहरू जैसे ही आगे बढ़े, पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार करके नैनी जेल में बंद कर दिया। मोतीलाल नेहरू ने महात्मा गांधी के नाम तार भेजा—बापू आपने कहा था-बनाकर देखो। हमने बनाने से पहले ही देख लिया।

आपको मालूम है कि विनोबा के जमाने में दो बड़े काम हुए-भूदान और ग्रामदान। विनोबा के आह्वान पर करीब 48 लाख एकड़ जमीन भूदान में मिली। विनोबा ने कहा कि हमें उससे आगे जाना है और ग्रामदान प्राप्त करना है। देश के विभिन्न राज्यों में ग्रामदान अधिनियम बना और अनेक गांव उसमें शामिल हुए। उसमें राजस्थान का बांसवाड़ा और कुछ जिले भी शामिल है। ग्रामदान में ग्रामसभा मालिक है और कोई उस जमीन को बेच नहीं सकता। अगर बेचने की नौबत आयी तो ग्रामसभा की अनुमति लेनी पड़ेगी। मुम्बई में रायगढ़ जिले में ग्रामदान की जमीन रिलायंस ने खरीदी। तो हाईकोर्ट ने रिलायंस को कहा कि ग्रामदान की जमीन ग्रामसभा की अनुमति के बिना बाहर का आदमी नहीं खरीद सकता। इस खरीदी-बिक्री में कानून का उल्लंघन हुआ है। इसलिये बिक्री को हम रद्द करते हैं और रिलायन्स को आदेश देते हैं कि ये जमीन गांव को वापस दी जाय। रिलायंस के दो सौ करोड पानी में गये और गांव की जमीन ग्रामसभा को मिल गयी। ये बात राजस्थान के संदर्भ में इसलिए कह रहा हूं कि सरकार ने किसानों से कहा कि किसान सम्मान योजना का पैसा उसे ही मिलेगा, जिसके नाम से जमीन होगी। हम सरकार से अपील करें। विनोबाजी का आदर होना चाहिए और ग्रामदानी गांवों को वह सुविधा मिलनी चाहिए, जो देश के दूसरे किसानों को मिलती है।

छत्तीसगढ़ में भूदान की 15,000 एकड़ जमीन का वितरण अभी तक नहीं हुआ है। यहां की सरकार को मध्यप्रदेश की सरकार डाक्यूमेंट नहीं दे रही है। उसके कारण जमीनों का वितरण और भूदान-बोर्ड का गठन नहीं हो पा रहा। 30 जनवरी को अलीगढ़ में गांधी के फोटो को गोली मार दी। इतने से ही संतोष नहीं हुआ तो नकली खून बनाया गया। फिर भी फोटो में गांधीजी मुस्करा रहे हैं। उन्होंने घोषणा की है कि हर साल 30 जनवरी को गोली मारेंगे। क्योंकि गोली मारते समय भी गांधी मुस्करा रहा है। ये एक दृश्य मैंने आपके सामने रखा, अब एक दूसरा दृश्य रखता हूं। आज से कई दशक पहले इसी रायपुर में सर्वोदय का सम्मेलन हुआ था। विनोबा आये थे। उन्होंने कहा था कि यदि गांव को ग्रामस्वराज्य की दिशा में ले जाना है तो त्रिगुण शक्ति को मज़बूत करना होगा। उसमे एक शांति सेना थी, एक ग्रामस्वराज्य था और एक खादी थी। आज देश की स्थिति बिगड़ी हुई है। एक-एक कार्यक्रम का प्रचार-प्रसार करना होगा। मुझे खुशी है कि सीतामढ़ी जिला सर्वोदय मंडल ने किसानों के संघर्ष को उठाया है। विदर्भ में किसान अधिकार अभियान के तहत किसानों के सवाल हमारे अविनाश भाई उठाते रहते हैं। जंगल में आदिवासी नहीं रह सकते, ऐसा सुप्रीम कोर्ट ने फैसला दिया है। उसके बारे में अगले सत्र में चर्चा करेंगे। सर्व सेवा संघ ने तय किया है कि अगर कानून अनुमति देता है तो सर्व सेवा संघ एक पार्टी बनेगा। सुप्रीम कोर्ट के उस आदेश को हम सुप्रीम कोर्ट में ही चुनौती देंगे।

अब दूसरा विषय ये कि नक्सलवाद के नाम पर छत्तीसगढ़ के आदिवासियों और विशेष कर महिलाओं पर जो अत्याचार हुए, आप सुनिये तो रोंगट खड़े हो जायेंगे। हिटलर भी राष्ट्रवादी था। मुसोलिनी भी राष्ट्रवादी था। क्या आपको हिटलर मुसोलिनी फिर से पैदा करने हैं? हिंसा से रास्ता खत्म होनेवाला होता तो कब का खत्म हो गया होता। हिंसा से हिंसा और युद्ध से युद्ध खत्म नहीं होता। दुनिया के सभ्य देशों ने इतने बम बनाये हैं कि कई हजार बार दुनिया का विनाश किया जा सकता है। मानव कहता है कि भगवान ने एक धरती बसाई है, हम दस धरती मिटा देंगे। हम भगवान से दस कदम आगे चलते हैं। भगवान निर्माण करता है और हम विनाश के लिये शक्ति संग्रह कर रहे हैं।

अधिवेशन में दूसरे सत्र की चर्चा का विषय था—जल, जंगल और जमीन। इस सत्र के मुख्य अतिथि थे गौतम बंद्योपाध्याय और अध्यक्षता की अरविंद अंजुम ने।

गौतम बंद्योपाध्याय : छत्तीसगढ़,

विदर्भ, दंडकारण्य, दक्षिण कोशल, मानभूम, कैमूर और झारखंड ये हमारे साझा कल्चर जोन हैं, भू-सांस्कृतिक क्षेत्र है। ये देश का सबसे बड़ा आदिवासी इलाका है। ये भू-सांस्कृतिक क्षेत्र देश ही नहीं, दुनिया की सबसे बड़ी अमीर भूमि है। कोयला से लेकर सोना और अभ्रक तक देने वाली ये उपजाऊ धरती दुनिया की सबसे अमीर धरती है। ये जमीन दुनिया को रास्ता दिखाने की क्षमता रखती है। इसलिए छत्तीसगढ़ के 1 करोड 25 लाख लोग आपके आभारी हैं। इधर यह अधिवेशन हो रहा है और उधर देश में नफरत बोयी जा रही है। अगर ऐसा होता है तो ये देश सुंदर नहीं हो सकता है। आदिवासी प्रवृत्ति से ही एकजुट होता है। प्रकृति के साथ प्रेम रख के संतुलन के साथ जिंदा रहता है। एकजुटता बनाके रखना, संयोजन के मूल्य को बना के रखना गांधी का मूल्य है, ये आदिवासी का मूल्य है, ये देश को नहीं दुनिया को बचाने का मूल्य है।

अंधेरे में तीन प्रकाश, गांधी-विनोबा-जयप्रकाश। ये कोई नारा नहीं, ये मूल्य है। ये सच्चाई है और लाखों लोगों की कुर्बानी से निकली आवाज़ है। इस सब के बीच हम जल-जंगल-जमीन, खनिज, ज्ञान-विज्ञान की बात करते हैं। लेकिन गरीबी-भुखमरी-कुपोषण, राज्यों के द्वारा दमन, बलात्कार भी सच्चाई है। एक तरफ इतना अमीर धरती और एक तरफ इतनी दमन! ये राजनीतिक सवाल है। विकास के अलग-अलग भू-सांस्कृतिक क्षेत्र के आधार पर विकास का पैमाना नहीं खींचा गया, ये एक साजिश है, ये एक षड़यंत्र है, ये एक मोनोपॉली है। आज जिस तरह लोकतंत्र का संकट खड़ा कर दिया गया है, इससे लोकतंत्र के ऊपर गहरा आघात पहुंचा है। लोकतंत्र अपनी आत्मा को बचाने के लिये जूझ रहा है। एक विचार के लोगों को महत्त्व देना पूरे लोकतंत्र को समाप्त कर देना, निर्णय की क्षमता को समाप्त कर देना एक साजिश है, देश को समाप्त करने की प्रक्रिया है, देश के मूल्य बर्बाद करने की प्रक्रिया है। इस लड़ाई में आगे बढ़ना होगा। इसलिए जल-जंगल-जमीन की लड़ाई में सर्वोदय ने जो निर्णय लिया है, इसमें इम आपके साथ हैं। सर्वोदय कार्यकर्ता होने के नाते हमारी जबाबदेही बनती है।

अरविन्द अंजुम : दिल्ली की वर्तमान सरकार का गठन 26 मई 2014 को हुआ और 31 दिसंबर 2018 को भूमि अधिग्रहण कानून 2013 के किसान पक्षीय प्रावधानों को समाप्त करने के लिए संशोधन अध्यादेश लाया गया। यह इस सरकार का किसानों के खिलाफ पहला सर्जिकल स्ट्राइक था। पूरे देश के विस्थापन विरोधी संगठनों, भूमि हकदारी आंदोलनों, किसान संगठनों तथा आम जनता ने मिलकर कड़ा प्रतिवाद किया। तीन-तीन बार संशोधन अध्यादेश लाने के बाद अंततः सरकार को पीछे हटना पड़ा और जनता ने सर्जिकल स्ट्राइक को फर्जिकल स्ट्राइक में बदल डाला। सरकार की कॉरपोरेट प्रतिबद्धता को नष्ट कर दिया गया।

केन्द्र सरकार ने न केवल जमीन पर कॉरपोरेट कब्जे का रास्ता प्रशस्त किया, बल्कि खनिज पर भी कॉरपोरेट को सुविधा देने के लिए कानून में संशोधन किया। इसी तरह वनाधिकार कानून 2006 के अनुसार 'ऐतिहासिक न्याय को दूर करने' के उद्देश्य को दरकिनार करके अंधाधुंध तरीके से हकदारी के दावों को खारिज किया गया। आज हमें न केवल अपने कानूनी हकों की हिफाजत करनी है बल्कि जनता के अधिकारों के लिए बेहतर अवसर, स्थान और वातावरण तैयार करना है।

अधिवेशन के दूसरे दिन का पहला सत्र भी गांधी-150 वर्ष की चुनौतियों पर केन्द्रित रहा। इस सत्र के मुख्य अतिथि कमल टावरी थे और अध्यक्षता लक्ष्मीदास जी ने की। दूसरे सत्र में भी इन्हीं अतिथियों की उपस्थिति में प्रदेश सर्वोदय मंडलों की रिपोर्ट्स प्रस्तुत की गयीं। अंत में समापन सत्र की शुरुआत हुई। इस सत्र का विषय था—वर्तमान राष्ट्रीय परिस्थिति। इस सत्र के मुख्य अतिथि थे छत्तीसगढ़ के मुख्यमंत्री भूपेश बघेल। मुख्य अतिथि का स्वागत सर्व सेवा संघ अध्यक्ष महादेव विद्रोही ने इन शब्दों में किया—

हिंसा से हिंसा और युद्ध से युद्ध खत्म नहीं होता। दुनिया के सभ्य देशों ने इतने बम बनाये हैं कि कई हजार बार दुनिया का विनाश किया जा सकता है। मानव कहता है कि भगवान ने एक धरती बसाई है, हम दस धरती मिटा देंगे। हम भगवान से दस कदम आगे चलते हैं। भगवान निर्माण करता है और हम विनाश के लिये शक्ति संग्रह कर रहे हैं।

महादेव विद्रोही : हमारे मुख्यमंत्री जी आज साबरमती आश्रम में थे और अभी दो घंटे पहले वहां से लौटे हैं। मुख्यमंत्री जी को छत्तीसगढ़ के लोग प्यार से भूपेश भैय्या कहते हैं, तो मैं भी भूपेश भैय्या कहता हूं। आजकल देश में गोत्र की बहुत चर्चा है। मुझे कहते हुए प्रसन्नता हो रही है कि हमारा और आपका एक ही गोत्र है। हम सबकी नाल गांधी से जुड़ी है। भूपेश जी का जो स्नेह लोगों के प्रति है, उसने हमें इतना विश्वास दिया है कि अब आदिवासियों पर अत्याचार नहीं होगा। देश की सुरक्षा के नाम पर और राष्ट्रभक्ति के नाम पर पूरे देश, विशेषकर छत्तीसगढ़ में आदिवासियों के साथ अब तक बहुत अन्याय हुआ है। लेकिन अब उन्होंने राहत की सांस

ली है। एक ऐसे व्यक्ति ने कमान संभाली है, जिसके ऊपर हम विश्वास कर सकते हैं। छत्तीसगढ़ में 15 हज़ार एकड़ जमीन भूदान में मिली थी। करीब 7-8 हज़ार एकड़ जमीन का वितरण नहीं हो पाया है। एक महत्त्वपूर्ण बात की तरफ आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। देश के अनेक राज्यों में गांधी विचार विभाग चलते हैं। छत्तीसगढ़ की यूनिवर्सिटीज में भी आपके सहयोग से उसकी शुरुआत हो और गांधी धारा पूरे छत्तीसगढ़ में बहे, इतना ही हमारा आग्रह है।

भूपेश बघेल : मैं आपलोगों का प्रदेश की जनता की ओर से आभार प्रकट करने आया हूं। उन्होंने अपने निजी अनुभवों को साझा करते हुए कहा कि मेरे पिताजी सर्वोदयी थे और उन्हीं के साथ रहकर मैंने गांधीवाद की दीक्षा ली थी। सर्वोदय से जुड़े साथी हमारे घर पर हमेशा आते रहते थे। स्वयं विनोबाजी भी हमारे घर पर आये थे।

आज जल-जंगल-जमीन पर हक की बात हो रही है। छत्तीसगढ़ में वनाधिकार कानून के तहत जो आवेदन आये थे, उनमें से 4.5 लाख दावों को पिछली सरकार ने निरस्त कर दिया था। अब हमारी सरकार ने फिर से उनके आवेदनों की समीक्षा कर वाजिब हकदारों को पट्टा देना प्रारंभ कर दिया है। सरकार ने आदिवासियों की जमीन उद्योग लगाने के लिए टाटा को दिया था पर, उसपर उद्योग नहीं लगाया गया। हमने विधेयक लाकर 4200 एकड़ जमीन आदिवासियों को वापस कर दी। उन्होंने अफसोस व्यक्त किया कि जिस सरदार पटेल ने देशी रियासतों का विलय कर अखंड भारत का निर्माण किया, उनके स्टैच्यू के नाम पर आदिवासियों से जमीनें छीनी जा रही हैं। छत्तीसगढ़ सरकार ने एक ही दिन में किसानों के कर्जे माफ किये और धान का समर्थन मूल्य 2500 रुपये प्रति क्विंटल कर दिया। छत्तीसगढ़ सरकार गांवों के स्वावलंबन के लिए नयी योजना पर अमल कर रही है।

एस. एन सुब्बाराव : बघेल साहब हमारे तीर्थस्थान से होकर आ रहे हैं। भारत में अच्छे-अच्छे तीर्थस्थान है— प्रयागराज, बनारस, बहुत सारे हैं लेकिन हमारे लिए साबरमती हमारा तीर्थस्थान है। हम लोगों के लिये चंपारण तीर्थस्थान है। आप सीधा अहमदाबाद से आये, इतना समय गांधीजनों के लिए दिया, आपका बहुत-बहुत धन्यवाद। मनुष्य को चारित्र्यवान बनाना होगा। गांधी 150 में हम प्रयत्न करें कि हम अधिक से अधिक चारित्र्यवान बने। साथ में कानून से नहीं, प्रेम से भष्ट्राचार मुक्त भारत बने। अगले महीने मध्य प्रदेश जा रहा हूं। उनसे भी निवेदन करूंगा कि गांधी 150 के 6 महीने बीत गये, तो आपसे बहुत आशा है। क्योंकि आप गांधी विचार में रहे हैं। आज गांव-गांव में गांधी की बात जानी चाहिए। आप सभी से बहुत-बहुत अपेक्षा करके लौटेंगे, बहुत-बहुत शुभकामनाएं।

दो दिनों की इस विहंगम उपस्थिति और विशद् चर्चा के बाद अधिवेशन सम्पन्न हुआ। अधिवेशन में देशभर से आये लोकसेवकों और सर्वोदय मित्रों के अलावा जो विशिष्ट लोग आये, उनमें आदित्य पटनायक, जयवंत मठकर, टीआरएन प्रभु, टी राजेन्द्रन, अशोक मोती, अशोक शरण, आशा बोथरा, नीता महादेव, सियाराम साहू, चंदन पाल, शेख हुसैन, रमेश पंकज, के. एम. जोसेफ, अविनाश काकड़े आदि के नाम शामिल है। अधिवेशन के पहले दिन अधिवेशन स्थल से एक जुलूस भी निकाला गया, जिसका समापन एक सभा के रूप में हुआ। सभा की शुरुआत गांधी प्रतिमा पर माल्यार्पण के साथ हुई।

–सर्वोदय जगत डेस्क

भूदान की जमीन पर अवैध कब्जे के खिलाफ मार्च

तेलंगाना राज्य में भूदान में प्राप्त लगभग 1000 एकड़ जमीन पर अवैध कब्जे के खिलाफ भूदान दिवस पर 18 अप्रैल को रंगारेड्डी जिले के इब्राहिमपट्टनम् बोर्ड को भंग कर दिया गया है और भूदान में प्राप्त उक्त जमीन की खरीद-फरोख्त का अवैध खेल चल रहा है। जबकि कानूनन भूदान की जमीन खरीदी या बेची नहीं जा सकती।

मंडल के आदिभाटला गाँव में एक भूदान सम्मेलन आयोजित किया गया। सम्मेलन में लगभग 3000 ग्रामीणों और प्रतिनिधियों की उपस्थिति में सर्व सेवा संघ के महामंत्री शेख हुसैन, सीपीआई के सी. वेंकट रेड्डी, कांग्रेस के जी. निरंजन, पूर्व सांसद अजीज पाशा, तेलंगाना सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष और रामचन्द्र रेड्डी के पौत्र वी. अरविन्द रेड्डी, पुत्र प्रमोदचन्द रेड्डी तथा तेलंगाना सर्वोदय मंडल के महामंत्री आर. शंकर नायक ने भूदान की जमीन पर नाजायज कब्जे के खिलाफ आवाज उठायी।

उल्लेखनीय है कि तेलंगाना में भूदान सम्मेलन के बाद सभी ने सर्वे नं. 51, 52, 53 की उक्त जमीन का मौके पर जाकर मुआयना किया और इस संबंध में सरकार से मिलकर स्थिति से अवगत कराने का निर्णय लिया गया।

इसके पूर्व प्रातः 9 बजे पोचमपल्ली में वी. रामचन्द्र रेड्डी की प्रतिमा पर माल्यार्पण किया और सामूहिक प्रार्थना की गयी।

ज्ञातव्य है कि 18 अप्रैल 1951 को वी. रामचन्द्र रेड्डी द्वारा दिये गये 100 एकड़ जमीन के दान से भूदान आंदोलन का सूत्रपात हुआ था।**–आर. शंकर नायक,**

महामंत्री, तेलंगाना प्रदेश सर्वोदय मंडल

पर्यावरण के मोर्चे पर नार्वे पहले स्थान पर

जलवायु के बारे में ताजा अंतर्राष्ट्रीय रिपोर्ट डराने वाली है। साइंस जर्नल में छपे रिसर्च की मानें तो समंदर हमारी सोच से 40 फीसदी ज्यादा तेजी से गर्म हो रहा है। जलवायु परिवर्तन पर नजर रखने वाले यूएन के वैज्ञानिकों ने अक्टूबर 2018 में चेतावनी दी थी कि अगर कड़े कदम नहीं उठाए गए तो बढ़ते तापमान की वजह से 2040 तक भयंकर बाढ़, सूखा, अकाल और जंगल की आग का सामना करना पड़ सकता है। जलवायु परिवर्तन के खतरों से निपटने के लिए वैश्विक समुदाय को लंबा सफर तय करना है, लेकिन गुड कंट्री इंडेक्स के मुताबिक कुछ देश इसमें सकारात्मक योगदान दे रहे हैं।

इस सूचकांक का मकसद धरती और इसकी जलवायु पर अलग-अलग देशों के प्रभाव को मापना है। इसे तैयार करने वाले स्वतंत्र नीति सलाहकार सिमॉन एन्होल्ट कहते हैं कि भूमंडलीकरण और पारस्परिक निर्भरता के युग में हर चीज का पूरी व्यवस्था पर असर पड़ता है, चाहे तुरंत हो या देर से। मैं ऐसा पहला इंडेक्स बनाना चाहता था, जिससे यह मापा जा सके कि किसी देश का उसकी सीमाओं के बाहर पूरी मानवता और धरती पर क्या प्रभाव पड़ता है।

इस सूचकांक की टॉप 10 रैंकिंग में यूरोपीय देशों का दबदबा है, लेकिन दुनिया भर के कई देश पर्यावरण पर अपने नकारात्मक प्रभाव को कम करने की सफल कोशिशें कर रहे हैं। हमने ऐसे 5 देशों के निवासियों से बात की और उनसे पूछा कि उनको ऐसे देश में रहना कैसा लगता है जो इस धरती को बचाने की कोशिशों में जुटा हुआ है।

उल्लेखनीय है कि धरती और जलवायु में सकारात्मक योगदान देने वाले देशों की सूची में नार्वे अव्वल है। पर्यावरण के लिए इसने ऐसी कई पहलकदमियों का नेतृत्व किया है। नार्वे के लोगों ने सबसे ज्यादा इलेक्ट्रिक कारें अपनाई हैं और सरकार ने शपथ ली है कि 2030 तक यह देश उस मुकाम पर पहुंच जायेगा जहां से वह पर्यावरण को कोई क्षति नहीं पहुंचायेगा। प्रकृति के साथ इस देश का रिश्ता नीतियों से बहुत आगे तक है। नार्वे के लोगों ने खुले में रहने की अवधारणा को अपनाया है। वे सेहतमंद और खुश रहने के लिए घर के बाहर वक्त बिताने की अहमियत को समझते हैं। नार्वे में बाइक शेयरिंग प्रोग्राम चलाने वाली कंपनी 'अर्बन शेयरिंग' के संस्थापक और सीईओ एक्सेल बेन्टसेन कहते हैं, 'यह हमारी संस्कृति का हिस्सा है। बहुत लोगों के लिए यह धर्म जैसा है।' हम सभी मौसम में घर के बाहर समय बिताते हैं। हमारे बच्चे बाहर झपकी भी ले लेते हैं। राजधानी ओस्लो इस मामले में अद्वितीय है कि आप यहां सीधे जंगल से आ-जा सकते हैं। 2019 में यूरोपीय आयोग ने जलमार्ग बहाल करने, साइकिलिंग और सार्वजनिक परिवहन पर निवेश करने और कार्बन डाईऑक्साइड उत्सर्जन को ट्रैक करने का तरीका खोजने के लिए ओस्लो को यूरोप की ग्रीन कैपिटल घोषित किया था।

इस शहर ने अपने केन्द्रीय हिस्से को कार से मुक्त कर लिया है। पार्किंग स्पेस को हटाकर वहां पैदल चलने वालों और बाइक के लिए ज्यादा जगह बनाई गयी है। नार्वे की घरेलू ऊर्जा जरूरतों का 99 फीसदी हिस्सा पनबिजली से पूरा होता है, फिर भी यह देश एक प्रमुख तेल उत्पादक और निर्यातक है जो पहले ही एक विवादित राजनीतिक मुद्दा बन चुका है।

ब्रिटेन के डेविड निकेल 2011 से नार्वे में रह रहे हैं और वहां के जीवन पर ब्लॉग लिखते हैं। वह पूछते हैं, क्या तेल और गैस का निरंतर उत्पादन और निर्यात उचित है क्योंकि इससे पर्यावरणीय ढांचे पर खर्च करने के लिए ढेर सारा पैसा मिलता है?' बहुत लोग सोचते हैं कि यह खर्च दूसरे शहरों और देशों को प्रेरित करेगा और अंततः एक हरी-भरी दुनिया बनेगी। लेकिन दूसरे कई लोग सोचते हैं कि यह दोहरा मापदंड है। यह आप पर निर्भर है कि आप इनमें से क्या सही समझते हैं। **–लिंडसे गैलोवे-बीबीसी**

श्रमिक स्वास्थ्य

सिलिकोसिस एक लाइलाज बीमारी

❑ शशि त्यागी

राजस्थान के थार रेगिस्तान में पत्थरों की खानें प्रचुर मात्रा में हैं, उनमें हजारों श्रमिक अपनी आजीविका चलाने हेतु कार्य करते हैं। जागरुकता के अभाव में ये श्रमिक यह नहीं जानते कि जो खानें इनकी जीविका का साधन हैं उन्हीं खानों से वे लाइलाज बीमारी की गिरफ्त में आते जा रहे हैं—ये बीमारी है सिलिकोसिस।

आचार्य जे.बी कृपलानी के आदेशानुसर पश्चिमी राजस्थान के थार मरुस्थल में लक्ष्मीचन्द त्यागी, माणक भाई, रोशन लाल जी, लक्ष्मी बहन एवं मैंने यहां की विकट परिस्थितियों में कार्य करना शुरू किया था। 1983 में विभिन्न गांधी सर्वोदय विचारकों की सहायता से ग्रामीण विकास विज्ञान समिति (ग्राविस) की स्थापना की। 1988 में समाज कल्याण विभाग की ओर से महिला प्रशिक्षण शिविर का कार्य शुरू किया और इस कार्य हेतु जेलू गाँव को चुना।

जेलू गाँव उस समय बहुत संकटग्रस्त गाँव था। परिवहन यातायात के साधन ना के बराबर थे। लोगों की आजीविका वर्षा आाधारित खेती पर निर्भर करती थी। यदि वर्षा कम हो जाये जो आजीविका का एकमात्र साधन पत्थर खान में मजदूरी था। जोधपुर का पत्थर विश्व प्रसिद्ध है, उच्चतम न्यायालय तथा संसद भवन में भी यह पत्थर लगा है। इस कारण से पत्थर खानों में मजदूरों की मांग रहती थी। कार्य के सिलसिले में मजदूरों को खनन क्षेत्रों में ही रहना पड़ता था। विकट परिस्थिति में जैसे तैसे मजदूर वहां पर रहते थे। जेलू गाँव में एक महिला प्रशिक्षण शिविर चल रहा था, उस दौरान मेरा वहां ग्रामीण समाज के साथ रहना हुआ। पानी की भारी किल्लत थी, शिविर समाप्त हुआ तो लक्ष्मीचंद त्यागी ने अपने अनुभवों के आधार पर एक रिपोर्ट लिखी, जिसके अनुसार—

शिविर में भाग लेने वाली कुल महिलाओं में से 72 प्रतिशत महिलाएं विधवा थीं। उनके पति पत्थर की खानों में काम करने जाते थे। वहां उन्हें टी.बी. हो जाती और इस कारण से वे जल्द ही मृत्यु का ग्रास बन जाते। मजदूरी कम मिलती थी और टी.बी. के इलाज में खर्च ज्यादा होता था तो खान मालिक ऋण के रूप में मजदूर को पैसा देता और पैसा वापस ना चुका पाने पर मजदूर के बच्चों व पत्नी को काम पर रखकर पैसे की वसूली करता। महिलाओं एवं बच्चों को भी सिर दर्द, खांसी व बुखार रहता था। बच्चे स्कूल नहीं जाते थे। कुपोषण ज्यादा था। लोग अफीम का सेवन करते ताकि थकान महसूस ना हो और अफीम की उत्तेजना में काम किया जा सके। शिक्षा व स्वास्थ्य की कोई सुविधा नहीं थी।

एक तो रोजगार की कमी, ऊपर से टी.बी. की मार, गाँव का बुरा हाल था। जोधपुर में उस समय टी.बी. अस्पताल से सम्पर्क किया तो उन्होने बड़ी सहृदयता से सहयोग किया। इलाज शुरू हुआ परन्तु कुछ मरीजों को फायदा नहीं हो रहा था तो डॉ. ने बताया कि ये सिलिकोसिस है और सिलिकोसिस लाइलाज बीमारी है। यह खानों में काम करने के कारण होने वाले health hazard का परिणाम है। पता चला कि सरकार या खान मालिक द्वारा इसका किसी भी प्रकार का मुआवजा नहीं दिया जाता है। खान मजदूर को स्वयं ही इलाज कराना पड़ता है। 14-15 वर्ष की आयु में काम शुरू करने पर जल्द ही बीमारी पकड़ लेती है और आदमी 40-45 साल की उम्र में खत्म हो जाता है। पीछे रह जाती है, पत्नी व नाबालिग बच्चे और खान मालिक का कर्ज। ऐसे में महिला व बच्चे खान मालिक के यहाँ काम करने को मजबूर हो जाते हैं। यह चक्र चलता रहता है।

इसी बीच हमारे वरिष्ठ मार्गदर्शक रूद्रभाई हमारे साथ आ गये थे। उनके व त्यागी जी के मार्गदर्शन में कार्य किया फिर दिल्ली में एक अध्ययन किया गया। इसी क्रम में केन्द्रीय श्रम सचिव ने सरकार द्वारा बनायी गई नियमावली भेजी जिसमें health hazard के कम्पनसेशन का प्रावधान था। सबसे पहले ग्राविस ने सिलिकोसिस के प्रति लोगों को जागरूक किया व समस्या के समाधान के लिए आवाज उठाई। दबाव डाला गया तो कुछ शुरूआत हुई। मेडिकल चेकअप बोर्ड द्वारा होना था। मरीजों को जयपुर कैसे ले जाया जाए? ऐसी नाजुक हालात में मांग की गई कि हर जिले में बोर्ड बने व जाँच की व्यवस्था हो। जिलेवार बोर्ड बनाने में राजस्थान सरकार का सहयोग मिला। अभी तक 20 जिलों में सिलिकोसिस बोर्ड बन गये हैं और जाँच की व्यवस्था हो गई है, साथ ही बीमारी की अवस्था में 1 लाख रूपये व मरणोपरांत 3 लाख की सहायता सरकार से मिलनी शुरू हो गयी है। मजदूरों की हालात सुधरी है, उनसे बेगार लेना बंद हुआ है।

एक बार एक मजदूर तोलाराम रात को लगभग एक बजे ग्राविस केन्द्र पर आ गया। बहुत डरा हुआ था, उसने बताया कि खान मालिक ने उसको बंद करके रखा था। पेशाब जाने के बहाने बाहर निकला व फिर भागते-भागते यहाँ पहुँचा हूँ। त्यागीजी ने कहा कि चिंता मत करो, तुम यहाँ सुरक्षित हो। अगले दिन मैं, त्यागी जी, रूद्रभाई खान मालिक के पास गये तो वो कहने लगे कि ये सब झूठ है। इससे पहले हमारी कुछ जान पहचान एक बड़े खान मालिक से हो गई थी। किशोर

सिंह जी के साथ हम उनके पास गये। उन्होंने हमारा पूरा सहयोग किया। कुछ खास खान मालिकों को बुलाया और फैसला किया कि जो बाबा रामदेव के मंदिर जाकर सच बोलेगा उसी के पक्ष में न्याय हो जायेगा। सभी लोग मंदिर में पहुँचे तो तोलाराम जी ने कहा कि मेरे पास खान मालिक का कोई पैसा बाकी नहीं है। खान मालिक ने बाबा रामदेव की जय बोली और कहा कि ठीक है मैं तोलाराम को मुक्त करता हूँ। न्याय मिल गया था, अब तोलाराम जी आज़ाद हो गये लेकिन कुछ समय तक खान मालिक हमसे बहुत नाराज रहे। धमकी भी दी, कहा कि हम आपका उपाय कर देंगे। त्यागी जी ने कहा कि मैं कोई रोटी का ग्रास नहीं हूँ, जो आसानी से निगल जाओगे। मेरी शहादत भी काम करेगी, मैं मरने से नहीं डरता हूँ। उस वक्त वहां कोई मजदूर संगठन नहीं था, इसलिए मजदूर संगठन बनाया गया। आज वहां मजदूर संगठन एवं 2-3 अन्य संगठन भी सिलिकोसिस की समस्या से जुड़कर काम कर रहे है। अब वहां मजदूर संगठन बहुत मजबूत है।

ग्राविस द्वारा किये गये कार्यों के फलस्वरूप राजस्थान सरकार ने सिलिकोसिस नियन्त्रण एवं रोकथाम के लिये विभिन्न कदम उठाये हैं।

* सिलिकोसिस की जाँच, प्रत्येक माह के पहले व तीसरे शुक्रवार को कमला नेहरू चेस्ट अस्पताल, जोधपुर में निःशुल्क की जाती है।
* यदि श्रमिक जीवित है तो उसे केटेगरी 'A' का प्रमाण-पत्र जारी किया जाता हैं, जिसके अर्न्तगत सरकार द्वारा एक लाख की राशि अंतरिम राहत के तौर पर दी जाती है।
* यदि श्रमिक की मृत्यु सिलिकोसिस के कारण हो जाती है तो उसे केटेगरी 'B' का प्रमाण-पत्र जारी किया जाता हैं। जिसके अर्न्तगत सरकार द्वारा तीन लाख की राशि परिजनो को अंतरिम राहत के तौर पर दी जाती है। ❑

सिलिकोसिस : कारण और निवारण

यह एक धूल-जनित बीमारी है जो पत्थरों की खानों में कार्यरत मजदूरों को तेजी से प्रभावित करती है। पत्थर की चट्टानें सिलिकॉन-डाई-आक्साईड या सिलिका के सूक्ष्म कणों से मिलकर बनी होती है, इन खानों में खुदाई एवं गढ़ाई का कार्य किया जाता है तो सिलिका के सूक्ष्म कण वायुमण्डल में स्वतंत्र विचरण करने लगते हैं तथा वहाँ कार्यरत श्रमिकों के श्वास के साथ ये कण फेफडों में प्रवेश करते रहते हैं। लगातार इस वातावरण में रहने वाले श्रमिकों के फेफडों की कोशिकाओं व ऊतकों में ये कण जमा होते रहते हैं, जिसके कारण कोशिकाएं धीरे-धीरे मृत होती जाती है।

लक्षण

प्रारम्भिक स्थिति में सिलिकोसिस से ग्रसित रोगियों में कोई विशेष लक्षण दिखाई नहीं देते हैं। सिलिकोसिस बीमारी के लक्षणों को तीन चरणों में देखा जा सकता है :

प्रथम चरण

* तीव्रता से सांस लेना।
* लम्बी व गहरी सांस न ले पाना।
* हल्की खांसी व बलगम आना।

द्वितीय चरण

* तीव्र सांस, खांसी व बलगम बार-बार आने से सीने में दर्द होना।
* कार्य करने की क्षमता घटते जाना।

तृतीय चरण

* सीने में लगातार दर्द रहना।
* बलगम से खून आना।
* वजन व कार्य करने की क्षमता में तेजी से गिरावट।

सिलिकोसिस के मरीजों को तपेदिक (टी.बी.) का खतरा बढ़ जाता है।

अक्सर सिलिकोसिस व तपेदिक दोनों बीमारियाँ मरीज को साथ-साथ हो जाती हैं। सिलिकोसिस के मरीजों की मृत्यु में तपेदिक (टी.बी.) का होना एक मुख्य कारण है। सिलिकोसिस बीमारी का पता लक्षणों के आधार पर, छाती के एक्सरे व बलगम जांच के द्वारा लगाया जाता है।

उपचार

यह एक लाइलाज बीमारी है। अगर प्रारम्भ से ही बचाव के तरीकों का उपयोग किया जाये तो इससे बचा जा सकता है।

सिलिकोसिस से बचाव के उपाय

* खुदाई व गढ़ाई करने से पूर्व पत्थरों या चट्टानों को गीला करना चाहिये।
* धूल के कणों को रोकने हेतु कार्य स्थल पर पूर्णतया हवा का आगमन होना चाहिये।
* इलेक्ट्रो-स्टेटिक विधि द्वारा धूल के कणों को बैठाना चाहिये।
* काम करते समय श्रमिकों को मास्क का उपयोग करना चाहिये।
* स्वच्छता का विशेष ध्यान रखना चाहिए।
* समय-समय पर श्रमिकों को स्वास्थ्य जाँच करवाते रहना चाहिये।

किसानों को ही 'फसल' बना दिया राजनेताओं ने

❑ विजय जड़धारी

कृषि-संकट से निपटने की 'विपुल उत्पादन' वाली पिछली तरकीबों की जगह आजकल कर्ज-मुक्ति का नया ताबीज उछाला जा रहा है, लेकिन क्या कर्ज-मुक्ति से किसान आत्महत्याएं, खेती-किसानी से बेरुखी और गांव-देहातों से पलायन रुक जायेगा? प्रस्तुत है, इसी विषय की पड़ताल करता यह लेख। –सं.

दिन-रात हाड़तोड़ मेहनत कर देश की जनता का पेट भरने वाले अन्नदाता किसान अभूतपूर्व ऐतिहासिक संकट में छटपटा रहे हैं। पिछले लगभग दो दशकों में चार लाख से अधिक किसान आत्महत्या कर चुके हैं। लाखों किसान खेती छोड़कर बेरोजगारी व मजदूरी से जूझ रहे हैं, लेकिन उनकी पीड़ा महसूस नहीं की जाती, सरकारें और मीडिया इसे गंभीरता से नहीं लेते। हालांकि किसान संगठित नहीं कहे जा सकते, फिर भी कई बार बाजार की लूट से तंग आकर वे अपने उत्पादों को सड़कों पर बिखेर कर गुस्सा दिखाते हैं या कभी-कभार बड़े प्रदर्शन व आंदोलन भी करते हैं। पिछले वर्ष नवंबर 2018 में दिल्ली के जंतर-मंतर पर देश के विभिन्न हिस्सों से आये किसानों ने विशाल प्रदर्शन कर केन्द्र सरकार के समक्ष अपनी अन्य मांगों के साथ एक मांग यह भी रखी थी कि देश की संसद खेती-किसानी के संकट पर एक विशेष सत्र बुलाये, किन्तु यह तो दूर, पिछले पांच सालों में किसानों की गंभीर समस्या पर कुछ घंटे की चर्चा के लिए भी संसद के पास समय नहीं निकला। हां, आखिरी सत्र में, बिना चर्चा किए किसानों के लिए कुछ राहत की घोषणाएं जरूर हुईं।

संसद व राजनीतिक दलों ने किसानों की सुध तो नहीं ली, उल्टे आगामी चुनाव के लिए किसानों को ही 'फसल' बना दिया है। वोटों की अच्छी 'पैदावार' के लिए बीजों को खूब खाद, पानी देने की होड़ लगी है। पिछले वर्ष पांच राज्यों की विधान सभाओं के चुनावों में कांग्रेस ने किसानों की कर्ज माफी की घोषणा कर राजस्थान, छत्तीसगढ़ व मध्य प्रदेश में चुनाव जीतकर वोटों की अच्छी फसल काटी थी और सत्ता मिलते ही किसानों के दो लाख रुपये तक के कर्जे भी माफ कर दिये थे। इस नतीजे से उत्साहित कांग्रेस आगामी लोकसभा चुनाव में भी इसी 'पंचवर्षीय फसल' के फार्मूले की घोषणा कर चुकी है।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने माना था कि ऋण माफी से 20 फीसद किसानों को फायदा होता है इसलिए उन्होंने 80 फीसद किसानों के लिए 'प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि' के अंतर्गत पांच एकड़ से कम वाले हरेक किसान परिवार को 6 हजार रुपये सालाना देने का निर्णय लिया। पहली किश्त में दी जा रही दो हजार रुपयों की यह धनराशि किसान के बचत खाते में आने भी लगी है। अब सवाल ये है कि आखिर पांच सदस्यों का कोई परिवार कैसे इस महंगाई में केवल 500 रुपये में महीना गुजार सकता है? जहां किसानों का शोषण करने वाली कंपनियों को अरबों रुपयों की सब्सिडी दी जाती हो और सरकार के एक चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी को ही सिर्फ भत्तों में इससे बड़ी राशि मिलती हो, वहां किसानों को दी जाने वाली इस नगण्य मदद से उन्हें कितनी राहत मिलेगी।

कर्जमाफी कोई खैरात नहीं, अपितु किसानों का अधिकार है। आखिर किसानों को कर्जदार भी तो सरकार ने ही बनाया है। हरित क्रांति के दौर में भारी लागत वाली खेती के आते ही बैंकों व साहूकारों ने अपनी तिजोरियां किसानों के लिए खोल दी थीं और ब्याज, चक्रवृद्धि ब्याज से किसानों का खूब शोषण किया था। कर्जमाफी किसानों की महामारी पर मरहम जरूर है, किन्तु सफल इलाज नहीं। प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने 2009 में, दोबारा सत्ता में लौटने पर किसानों के 70 हजार करोड़ के कर्ज माफ किये थे। किन्तु कुछ समय बाद फिर किसानों की आत्महत्याओं का दौर शुरू हो गया।

ऋण माफी का असली सच यह है कि माफी की धनराशि तो किसान के कर्ज खाते में जमा होती है, किन्तु अनेक किसान मंडी के व्यापारियों से एडवांस व साहूकारों से कर्ज लेते हैं जो उनके सिर पर रह ही जाता है। बटाईदारों और खेत मजदूरों की पीड़ा कोई नहीं जानता। किसानों को अगली फसल लगानी पड़ती है, बीज, खाद, कीटनाशक, तेल, ट्रैक्टर व अन्य संसाधनों के लिए पैसा चाहिए, किन्तु गांठ में पैसा नहीं है। ऐसे में किसान को पुनः कर्ज के लिए बैंक या साहूकार की शरण में जाना पड़ता है। जहां तक 'प्रधानमंत्री किसान सम्मान' की मामूली निधि की बात है तो यह किसानों की जग-हंसाई जैसी है। प्रधानमंत्री चाहते तो किसानों की समस्या के स्थाई हल के लिए संसद में एक विधेयक ला सकते थे।

किसान आत्महत्याओं को आपराधिक दृष्टि से देखने का नजरिया भी अन्यायपूर्ण है। वास्तविकता यह है कि घरेलू हिंसा के तहत जिस तरह महिलाओं को आत्महत्या के लिए मजबूर किया जाता है उसी तरह किसानों को शोषणकारी कृषि नीति ने आत्महत्या के द्वार तक पहुंचाया है। किसानों की आत्महत्या व बदहाली की जड़ हरित-क्रांति के 'चमत्कारी' बीजों, रासायनिक खादों, कीटनाशकों, खरपतवार नाशकों व बाहरी संसाधनों में छिपी है। आरंभ में सरकार ने ये संसाधन मुफ्त

में किसानों को बांटे, इनसे कुछ दिनों तक बम्पर पैदावार भी हुई, लेकिन जब किसानों के खेत व फसलें रासायनिक खादों की आदतन नशेबाज हो गयीं तो मुफ्त का खेल खत्म हुआ। रासायनिक खादों ने बीमारियां फैलाईं तो जहर का कारोबार दवा के रूप में आ गया। किसानों को सब कुछ बाजार से खरीदना पड़ा। खर्चे बढ़ते गये और आमदनी कम होती गयी। किसानों ने विविधता की खेती छोड़, एकल नकदी फसलें उगाकर घाटा पूरा करने का प्रयास भी किया, किन्तु बाजार का शोषण उन्हें तबाह कर गया। किसान कंगाल हुए और बीज, खाद व जहर की कारोबारी देसी-विदेशी कंपनियां मालामाल हुईं।

हजारों साल पुरानी बिना लागत की घर की खेती कब भारी लागत में बदली और विविधता युक्त हजारों तरह के पारंपरिक बीज कहां लुप्त हुए, पता ही नहीं चला। किसानों की खेती की जीवन पद्धति घाटे के बाजार में बदल गयी। जहरीली खेती से उत्पन्न खानपान ने कैंसर, हृदयरोग, हड्डियों के रोग, मधुमेह, पथरी जैसे दर्जनों रोगों से किसानों व उपभोक्ताओं को जकड़ लिया। यह कैसी कृषि और कैसा विकास है जो पहले लोगों को बीमार करे और फिर इलाज के लिए अस्पताल खोले। कर्ज के जाल में फंसे किसानों की आत्महत्या, खेती छोड़ने की उनकी मजबूरी राष्ट्रीय संकट से कम नहीं है, इसे सिर्फ कर्जमाफी या सम्मान निधि के त्वरित लालच से हल नहीं किया जा सकता। जब तक किसानों की जीवन पद्धति और संस्कृति नहीं लौटेगी, खेती की लागत नहीं घटेगी और कर्ज आधारित खेती बंद नहीं होगी तब तक समाधान नहीं हो सकता। सबसे पहले हरित-क्रांति के दुष्प्रभावों पर सर्वोच्च न्यायालय की निगरानी में एक आयोग बनाया जाना चाहिए। खेती के तीन बड़े संकटों-बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हित वाली कृषि नीतियां, मानव-जनित जलवायु व मौसम परिवर्तन और जंगली व पालतू जानवरों के संबंध में नीतियां को राजनीतिक दलों के घोषणा पत्रों में शामिल की जानी चाहिए। ❑

चमत्कारिक होम्योपैथी

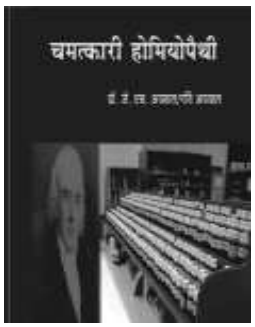

सभी प्रकार के रोगों के लिए होम्योपैथी अत्यन्त ही प्रभावकारी चिकित्सा है। खांसी, जुकाम, दस्त, उल्टी, बुखार, सिरदर्द इत्यादि तकलीफों को यह तुरंत ठीक कर देती है। एक्जीमा, दमा, फुन्सियां, टॉन्सिल, बवासीर इत्यादि रोगों में भी अत्यधिक प्रभावकारी है। हृदय रोग जैसे कि एन्जाइना पेक्टोरिस, हृदय का फैलना एवं अन्य हृदय रोगों को भी प्रभावकारी तरीके से ठीक किया जा सकता है। ट्यूमर को ठीक किया जा सकता है तथा कैन्सर को भी नियन्त्रित किया जा सकता है। कैन्सर में यदि सर्जन का चाकू नहीं लगा है, तब उसे भी ठीक किया जा सकता है। यह चोटों एवं घावों को भर सकती है, नींद ला सकती है, कमजोर एवं पतले व्यक्ति के स्वास्थ्य को ठीक कर सकती है। मोटे व्यक्तियों का वजन कम कर सकती है। यह याद्दाश्त को बढ़ा सकती है। बालों को झड़ने से रोका जा सकता है और बालों को जल्दी सफेद होने से नियन्त्रित किया जा सकता है। यह तेज दर्द से छुटकारा दिलाती है। पित्ताशय, गुर्दे एवं यूरेटर से पथरी को निकालती है तथा पथरी के दर्द से आराम दिलाती है।

इस दृष्टि से देखा जाय तो होम्योपैथी एक सरल एवं सस्ती चिकित्सा पद्धति है। यह गरीब वर्ग के भी आर्थिक दायरे में है। इसीलिए सर्व सेवा संघ प्रकाशन ने प्राकृतिक चिकित्सा की पुस्तकों के साथ होम्योपैथी पर प्रामाणिक पुस्तक प्रकाशित करने का निर्णय लिया था, जो अब जाकर साकार हुआ है।

मृत्यु : एक रहस्य

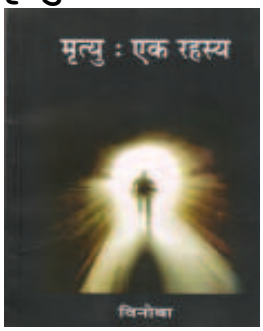

जीवन सबने देखा-भोगा है, मृत्यु भी सबने देखी है। एक धारणा है कि मृत्यु जीवन का अंत है। पर क्या यह सचमुच में अंत है या जीवन की कोई अन्य अवस्था है? कई और कौतूहल हैं—मनुष्य के मन में। यथा, जीवन के पहले क्या है? जीवन का गंतव्य क्या है? जीवन का स्रोत क्या है? कहां से आता है और कहां जाता है? जाता भी है या पूरी तरह समाप्त हो जाता है। ऐसे बहुतेरे प्रश्न हैं जो हमें लुभाते भी हैं और परेशान भी करते हैं। इन सब प्रश्नों को आचार्य विनोबा भावे ने आध्यात्मिक एवं दार्शनिक नजरिये से विश्लेषित किया है, जिसे जानना-समझना बेहद दिलचस्प है।

विनोबा कहते हैं, ''हम नष्ट हो जायेंगे, मर जायेंगे, ऐसी कल्पना प्रत्येक प्राणी के शरीर में रहती है और इस कारण भय भी रहता है। बाघ को देखते ही खरगोश कांप उठता है। वह जिजीविषा के कारण घबराता है। जीने की इच्छा उसके भीतर घर कर बैठी है। प्रत्येक के मन में ही नहीं, उससे भी गहराई में यानी शरीर में यह इच्छा पड़ी रहती है।'' इसलिए प्राणियों में मृत्यु का भय भी स्वाभाविक है और जीने की इच्छा भी।

विनोबाजी का यह तर्कबद्ध, शास्त्रीय, स्वानुभव युक्त विवेचन जन्म-मृत्यु के काफी-कुछ पहलुओं पर प्रकाश डालता है। उनकी विशाल वाङ्मयी सृष्टि से चुनी हुई यह सामग्री हमें ज्ञात-अज्ञात उभय प्रदेश में भ्रमण कराती है और चिन्तन के नये क्षितिज खोलती है। वह हमें आत्मचिन्तन की दिशा में यथाशक्ति, यथामति आगे बढ़ने का बल दे, इसी प्रार्थना के साथ सुविज्ञ पाठकों के चरणों में यह 'मृत्यु-मीमांसा' समर्पित है।

ये दोनों पुस्तकें सर्व सेवा संघ प्रकाशन ने प्रकाशित की है। ये हमारे सभी रेलवे बुक स्टालों पर उपलब्ध हैं। आप अपना क्रयादेश सीधे सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी-221001 के पते पर भी भेज सकते हैं। **–प्रकाशक**

विकास का छलावा और आम चुनाव

❑ प्रेम प्रकाश

आज़ादी मिलने के दिन से आज तक दो भ्रामक अवधारणायें इस देश को सामानांतर छलती आ रही हैं.राष्ट्रनिर्माण और विकास नाम के दो बड़े दावे एक साथ किये जाते हैं। क्या यह सवाल नही उठाया जाना चाहिए कि जिस राष्ट्र का अभी तक निर्माण ही नही हो सका,उसका विकास कितना संभव और कितना जायज़ है.?क्या ये राजनीतिक नारे हद नही पार कर रहे हैं, जब अपने निर्माण की प्रक्रिया से ही बहुत दूर छूटे हुए देश का विकास करने के मुद्दे पर आज़ादी के सत्तर साल बाद भी चुनाव लड़े जा रहे हैं? अब तो यह सवाल बुरी तरह उलझ चुके हैं. आज भी यही बताया जा रहा है कि सड़क बनाई जाएगी, बिजली लायी जाएगी, उद्योग लगाया जायेगा और इंफ्रास्ट्रक्चर बनाया जाएगा.यानी यह सब किया जाना अभी तक शेष ही था.? जैसे एक समय विकास के मूलभूत ढाँचे की अनुपस्थिति में ही इंडिया शाइनिंग का नारा घर-घर पहुंचा दिया गया था,उसी तरह राष्ट्रनिर्माण के बुनियादी सवालों से टकराए बिना ही विकास के झूठे गगनभेदी नारे भी घर-घर पंहुंचा दिए गये हैं.

आइये विकास और निर्माण की इस थ्योरी को समझने की कोशिश करें.पूरे गांधीदर्शन में कहीं भी विकास शब्द नही आता.वहां केवल रचना और रचना प्रक्रिया पर ही जोर है.स्वावलंबी जीवन और आनंदमय सुखी जीवन ही भारतीय आदर्शों का मूल है.वहां गांधियन थ्योरी ऑफ़ इकोनॉमिक्स तो है,लेकिन गांधियन थ्योरी ऑफ़ डेवलपमेंट नाम की कोई चीज़ नही है.सन 1947 में आज़ादी मिलने के बाद गांधी जी से बिड़ला जी ने पूछा कि बापू, अंग्रेजों के खिलाफ आपकी लड़ाई तो पूरी हो गयी,आज़ादी मिल गयी, अब आप किसके खिलाफ लड़ेंगे, क्यूंकि लड़ना तो आपका स्वभाव है! गांधी जी ने जवाब दिया कि अब तुम्हारे खिलाफ लडूंगा.बिड़ला जी सकपका गये.गांधी ने खुली घोषणा कर दी थी कि अब मेरी लड़ाई पूँजीवाद से है.संसाधनों का समान बंटवारा करके जबतक संसाधनों का लाभ समाज के अंतिम आदमी तक नही पहुँचाया जाएगा, तब तक समाज मूल्यवान नही बनेगा.सबसे कम वेतन पाने वाले और सबसे ऊंचा वेतन पाने वाले के बीच 1/20 का अनुपात ही मानवीय है.अगर आपके समाज में ऐसा नही हो रहा है तो आप अपने मूल्य गँवा रहे हैं। इस तरह देखें तो हम इस हालत में हैं कि पिछली पीढ़ियों के दिए सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और यहाँ तक कि नैतिक मूल्यों को बचाए रखने तक का संकट आ खड़ा हुआ है और इधर देखें तो राजनीतिक पार्टियाँ विकास का नारा देकर लूट का तंत्र विकसित करने में लगी हुई हैं.

70 सालों में व्यवस्था का यह चित्र बिगड़ता ही चला गया है.हम इसीलिए इसे उन्माद की संज्ञा देते हैं.जिस देश में समूह हैं,जातियां हैं,वर्ग हैं और अनेक राजनैतिक पार्टियाँ है,उस देश में समाज तो दुर्दशा को प्राप्त होगा ही.जो लोग विकास के नाम पर कुछ सड़कें, कुछ सुविधाएं और कुछ व्यवस्थाएं ठीक करने के वादे लेकर धूम मचाते हैं,आबादी का 2/3 हिस्सा उनके विकास के दायरे में आज भी कहीं नही आता.भारत में पूँजी और पूँजीवाद को मिले सरकारी समर्थन ने प्रायः सरकारों को पूंजीपतियों की गोद में लाकर डाल दिया.हमारी सरकारी व्यवस्थाओं की पूरी मशीनरी इन पूँजीपतियों के इर्दगिर्द ही घूमती है.उनका पेट पूरी तरह भर जाने के बाद जो कुछ बच जाता है,वह कृपापूर्वक उन लोगों तक पंहुंच जाता है जो देश का उच्चमध्यम वर्ग बनाते है. उनसे जो बचता है, वह उनसे नीचे के वर्ग तक पहुंच पाता है। रिस रिसकर समृद्धि की ओर चलने वाली यह प्रक्रिया कहीं तो जाकर रुकेगी। और इस तरह एक सीमा के बाद लोग वंचित रह जाते हैं और अभावग्रस्त जीवन जीने को बाध्य होते हैं। इस तरह यह उदार और खुली हुई कही जाने वाली अर्थव्यवस्था समाज के बहुमत के खिलाफ होने लगती है.

यह पतनशील अर्थव्यवस्था केवल कुछ लोगों के हित और बहुसंख्यक समाज के पतन के लिए काम करती है इसलिए आज जिंदा और ज़िन्दगी की जद्दोजहद में लगे लोगों की तरफ से यह आवाज़ उठाते रहना बहुत ज़रूरी है कि यह तो धोखा है.टैक्स आप सबसे साधिकार लेते हैं,लेकिन उसे बांटते कुछ ख़ास लोगो में ही हैं और इसके लिए आप वैध-अवैध कुछ भी कर डालते हैं,लाखों करोड़ के घोटाले तक कर डालते हैं। सवाल पैदा होता है कि सुविधाओं से छूटा हुआ वह वृहत्तर समाज जो बेईमानी,अराजकता और भ्रष्टाचार के खिलाफ इन्ही सरकारों को लगातार कोसता है, कैसे और क्यों इस प्रकार की शासन-पद्धति का समर्थन कर सकता है? सारे राजनीतिक दल इसी जगह तो एक हो जाते हैं.यही शासन-पद्धति तो सभी की है. सत्ता में रहकर समाज के आखिरी आदमी को राहत तो किसी ने नही दी. कोई अपने इतिहास की अफीम खिला देता है और कोई भविष्य के ऊलजलूल सपने दिखा देता है.हमारे बीच उन्माद के ये बीज छींटकर ये लोग हमारे वोट हमसे ले जाते हैं और मिलजुलकर हम पर शासन करते हैं. यह समाज कोई चेतनासंपन्न समाज तो हुआ नही,यह मूल्यवान समाज तो अभी बना नही।

इसी विन्दु पर पहुंचकर गांधी दर्शन का रचना तत्व प्रासंगिक बनता है.गांधी जी को अब यही समाज-निर्माण का काम हाथ में लेना था,वह काम तो शुरू ही नही हुआ, तो विकास किसका करोगे? यह विकास तो शब्द ही पश्चिम से आयातित है। दो-दो विश्वयुद्धों से जब मानवता बरबाद हो चुकी

थी,तब इस वैश्विक बर्बादी से पैदा हुआ था पश्चिम का व्यापार-बाज़ार.इसके पीछे की कहानी में बड़े-बड़े खम हैं.विश्वयुद्धों में सेवा का बिज़नेस करके अमेरिका ने बहुत डॉलर बना लिए थे.उसी पैसे को उसने ब्याज पर बांटना शुरू कर दिया.बदले में अपनी शर्तें लादने लगा.दुनिया के तमाम देशों का अमेरिका ने अंतहीन शोषण कर डाला.ये अमेरिका की वही शक्तियां हैं जो तीसरी दुनिया के देशों में अपने अनुकूल प्रशासनिक और आर्थिक सुविधाएं बहाल रखने के लिए इन देशों की सरकारों और राजनीतिक दलों को धन बांटती हैं. अमेरिकी व्यापार नीति का यह अध्याय 1949 से शुरू होता है,जब अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रूमैन ने पहली बार विकास का नारा दिया था.उसने एक विश्वव्यापी लालच पैदा किया,तीसरी दुनिया के तमाम देश इस लालच की जद में आये. अब लालच के वशीभूत विकास का स्वरुप कैसा होगा,यह तो कोई छुपी हुई बात नही है।

ऐसे में समाज का वंचित और बड़ा हिस्सा विकास के इस पैटर्न का समर्थन कैसे कर सकता है? एक तरफ हिन्दू एकता,देश प्रेम,और पाकिस्तान आदि पडोसी देशों के खिलाफ नफरत की भावना को भड़काकर और दूसरी तरफ स्वर्णिम इतिहास की झांकियां दिखाकर ये राजनैतिक घराने उस वृहत्तर समाज को ही अपने-अपने खेमों में बाँट देते हैं, जो सारे लोग यदि एक होकर, एक साथ, एक मत से सत्ताधारी जमात के खिलाफ आवाज़ उठा दें,तो देश का हर चौराहा तहरीर चौक बन जाए.

इसलिए वोट करने से पहले समाज को अपने निर्माण के लिए,अस्तित्व के लिए सोचना है.इसलिए वोट अपने निर्माण के लिए करना चाहिए, विकास के लिए नही,क्योंकि विकास के नाम में ही छल,छद्म और छलावा है.यह विकास इस सदी का सबसे बड़ा झूठ साबित होगा.अकूत धन के बल पर लड़े जा रहे एक प्रचार-युद्ध के अलावा विकास और कुछ नही है. ❑

विकास की परिभाषा

❑ लक्ष्मीदास

किसी भी प्रगतिशील समाज, देश, गाँव, परिवार के लिए विकास एक आवश्यकता है। यह भी सत्य है कि विकास एक सतत प्रक्रिया है। दृश्य, अदृश्य दोनों प्रकार से विकास होता रहता है। स्थूल विकास दिखाई देता है परन्तु सूक्ष्म विकास अदृश्य होता है। लोहा जब आग में डाला जाता है तभी से वह गर्म होना शुरू हो जाता है। लेकिन जब तक वह लाल नहीं होता, तब तक पता नहीं चलता कि वह गर्म हुआ या नहीं। दृश्य, अदृश्य दोनों प्रकार से या इससे भिन्न भी कोई प्रकार है तो वैसे भी, विकास हर तरह से जरूरी है। सकारात्मक विकास हम सबकी और खासकर विकासशील देशों की महती आवश्यकता है।

किसी भी विकास के लिए ढाँचागत आधार आवश्यक होता है। ढाँचागत आधार बन जाए तो विकास द्रुतगति से होता है। लेकिन ढाँचागत आधार जल्दी से दिखाई नहीं देता। किसी को कोई उद्योग खड़ा करना है और इसके लिए उसने पाँच सौ एकड़ भूमि खरीदी तो यह ढाँचागत आधार खड़ा करने की तैयारी है। लेकिन जमीन खरीद लेने के बाद भी वहाँ कोई उद्योग क्या, कुछ भी दिखाई नहीं देता। इतना ही फर्क पड़ता है कि पहले वह जमीन ''क'' के नाम से थी, अब ''ख'' के नाम से हो गई। यह भी सर्वसामान्य को दिखाई नहीं देता। लेकिन उद्योग के लिए आवश्यक भूमि की खरीद हुई तो वह उस खड़े होने वाले आलीशान उद्योग की शुरुआत है जो अत्यन्त आवश्यक है, जिसके बिना उद्योग खड़ा हो ही नहीं सकता। तो जमीन खरीदी है लेकिन उद्योग दिखाई नहीं दे रहा है। इसलिए भूमि का कोई महत्व ही नहीं है या भूमि खरीदने वाले की, लगने वाले उद्योग में कोई भूमिका ही नहीं है। यह मान लेना उचित नहीं है। हर सृजन की एक प्रक्रिया है। ढाँचागत आधार समेत, विकास की एक-एक ईंट के साथ प्रक्रिया शुरू हो जाती है। इस दृष्टि से जिसने जमीन खरीदी और जिसने उस उद्योग या उपक्रम का उद्घाटन किया, दोनों का ही उस उपक्रम में महत्वपूर्ण योगदान है। यदि अधिक गहराई से देखें तो भूमि खरीदने वाले की, यानी ढाँचागत आधार जुटाने वाले की जिम्मेदारी और महत्व अधिक है। नींव बनने में समय लगता है। नींव बन जाने के बाद भवन का निर्माण बहुत तेजी से होता है। इतना ही नहीं, मजबूत नींव बनाने के लिए औसत से अधिक समय लगता है लेकिन मजबूत नींव बन जाने के बाद, भवन निर्माण तेजी से होता है और भवन में मजबूती भी आती है। विकास की सतत प्रक्रिया में, कम ज्यादा, यही तरीका अपनाया जाता है।

भारत में विकास तेज गति से हो रहा है। लम्बी-लम्बी और चौड़ी-चौड़ी सड़कें बन रही हैं। रेल का विस्तार हो रहा है। बिजली का विस्तार हो रहा है। पुल बन रहे हैं, तो यह विकास दिखाई देता है। जनता गौरवान्वित महसूस करती है। अपने देश में हो रहे विकास को देख कर आनन्द की अनुभूति होती है। जब देश आजाद हुआ था, कहा जाता है कि उस समय देश में सुई तक नहीं बनती थी। यह शायद प्रतीकात्मक है। लेकिन यह सही है कि देश में कोई प्रगति नहीं थी। कोई ढाँचागत आधार भी नहीं था। उस समय को देखें और आज का विकास देखें तो आँखें चुंधिया जाती हैं। आज देश विकास के मामले में, कई बातों में, दुनिया के विकसित देशों में शामिल है। विकास की यह गति तीव्र है और होनी भी चाहिए। देश बड़ा है। आबादी घनी है। यदि विकास की गति तेज नहीं होगी तो दुनिया में हम पिछड़ जाएँगे। आजादी के बाद, जो ढाँचागत आधार बने, उनके कारण आज विकास हो रहा है। लेकिन जिन ढाँचागत आधारों का विस्तार आज हो रहा है, उनका लाभ विकास को तेजगति से आगे

बढ़ाने में मिलेगा। इसलिए हम मानते हैं और कहते भी हैं कि विकास एक सतत प्रक्रिया है। हमारी आवश्यकताएँ बढ़ती जाएँगी। अपेक्षाएँ भी बढ़ती जाएँगी। जरूरतें भी बढ़ती जाएँगी, उसी अनुपात में विकास की गति भी तेज करनी पड़ेगी।

विकास यानी क्या? मेरी दृष्टि से, मैं उसी को विकास मानूँगा जिससे अन्तिम जन का उत्थान संभव हो। अन्तिम जन को उसका आर्थिक आधार बढ़ाने में मदद मिलती हो। जिस विकास का मैंने ऊपर जिक्र किया है, वह बहुत ही आवश्यक है। लेकिन यदि उस विकास में अन्तिम जन को आर्थिक लाभ नहीं मिल रहा है, उस विकास में से भूखे की रोटी का, प्रावधान नहीं हो पा रहा है तो वह विकास अधूरा है। यह दलील दी जा सकती है कि सड़क बनती है तो रोजगार सृजन होता है। लेकिन इस दलील को और आगे बढ़ाएँ तो, जिस व्यक्ति को सड़क बनने से रोजगार मिल रहा है, उसे उसका रोजगार बनाए रखने के लिए सड़कों का निर्माण हमेशा करते रहना पड़ेगा। जिस रोजगार के लिए हर दिन प्रतीक्षा करनी पड़े, वह रोजगार आक्सीजन का तो काम कर सकता है लेकिन टिकाऊ नहीं हो सकता और न व्यक्ति के जीवन में स्थायित्व ला सकता है। व्यक्ति के पास रोटी, कपड़ा और मकान के साधन टिकाऊ और उसकी पहुँच के अन्दर होने चाहिए। हम आर्थिक विकास की बात करते हैं। उसके हमारे मापदंड है। लेकिन यह मापदण्ड, धरातल पर अपेक्षित परिणाम नहीं दे पा रहे हैं। देश की चहुंदिश तरक्की हो रही है लेकिन यदि यह तरक्की संतुलित नहीं है तो कहीं न कहीं हानि पहुँचा सकती है। किसी समाज की ताकत उसकी कमजोर कड़ियों से नापी जानी चाहिए। कुछ लोगों के पास भरपूर धन आ जाए और शेष लोग भूखे रह जाएँ तो पैसे वालों की ताकत देश की ताकत नहीं है बल्कि जो भूखे हैं, कमजोर हैं, उनकी ताकत ही देश की ताकत है। हमें विकास को भी इसी दृष्टि से देखना चाहिए। आवश्यक हो तो विकास की परिभाषा भी इन्हीं मापदण्डों के आधार पर करनी चाहिए।

विकास के हर प्रयास में, गरीब, बेरोजगार या कमजोर का यदि हित दिखाई दे, उसकी अपने जीवन की रोजमर्रा की जरूरत पूरी होती हुई नजर आए तो मैं उसे विकास मानता हूँ। यही समग्र विकास है। यही सम्पूर्ण विकास है। विकास की परिभाषा करते समय 'अन्तिम जन' सामने रहना चाहिए।

हमारे नीति निर्धारकों की ओर से यह आश्वासन दिया जाना चाहिए, अन्यथा विकास की दौड़ में गरीब और अमीर के बीच की खाई बढ़ती जाएगी और उसी गति में शोषण बढ़ता जाएगा। जबकि हमारा उद्देश्य शोषणमुक्त समाज बनाने का है। जिसमें हर हाथ को काम और हर मुँह को रोटी की संभावना हो तथा यह व्यवस्था टिकाऊ भी हो, वही उचित विकास है। समाज के अन्तिम व्यक्ति का विकास ही सर्वोत्तम विकास है। ❑

लोकसेवकों एवं सर्वोदय मित्रों का नवीनीकरण

कार्यसमिति ने लोकसेवकों के नवीनीकरण हेतु 1 अप्रैल से 30 जून तक अवधि निर्धारित की है। सभी लोकसेवक निष्ठा-पत्र संबंधित प्रदेश सर्वोदय मंडल को भेजे जायें। 31 जुलाई तक सभी निष्ठा-पत्र शुल्क के साथ सेवाग्राम कार्यालय पहुंच जाने चाहिए।

लोकसेवक शुल्क वार्षिक 30/- रुपये है अथवा 6 गुंडी सूत है। इसका विनिमय इस प्रकार होगा :

जिला सर्वोदय मंडल	:	**रु. 10/-**
प्रदेश सर्वोदय मंडल	:	**रु. 10/-**
सर्व सेवा संघ	:	**रु. 10/-**

लोकसेवक का अनुमोदक वहीं हो सकता/सकती है जो लगातार पिछले 2 वर्ष से लोकसेवक हों।

प्रदेश सर्वोदय मंडल की कार्यसमिति एक त्रि-सदस्यीय संपुष्टि समिति गठित करेगी। यह समिति सभी आवेदनों पर विचार कर सर्व सेवा संघ की संपुष्टि समिति को भेजेगी। यह संपुष्टि समिति सभी आवेदनों पर विचार कर उसे स्वीकृत या अस्वीकृत करेगी।

सर्वोदय मित्र :

सर्वोदय मित्रों के फॉर्म शुल्क के साथ 31 जुलाई तक सर्व सेवा संघ के सेवाग्राम कार्यालय पहुंच जाने चाहिए। जिला एवं प्रदेश में इसकी सूची बना लें।

सर्वोदय मित्र शुल्क का विनिमय इस प्रकार होगा :

जिला सर्वोदय मंडल	:	**रु. 6/-**
प्रदेश सर्वोदय मंडल	:	**रु. 2/-**
सर्व सेवा संघ	:	**रु. 2/-**

सर्वोदय मित्र के फॉर्म के ऊपरी भाग में पीछे की ओर भूल से 'कार्यालय के लिए' छपा है, इसे 'सर्वोदय मित्र के लिए' पढ़ें।

'सर्वोदय-मित्र सदस्यता पत्र' के ऊपर 'कार्यालय के लिए' लिखा है। इसका तात्पर्य सर्व सेवा संघ कार्यालय से है। जिन लोगों ने 31 मार्च 2019 को भी लोकसेवक निष्ठा-पत्र या सर्वोदय मित्र के फॉर्म भरे हों, उन्हे भी इस वर्ष (2019-20) नये सिरे से फॉर्म भरने पड़ेंगे।

महादेव विद्रोही
अध्यक्ष

चन्दन पाल
मंत्री

धारावाहिक

'बा' भारत वापसी

❑ गिरिराज किशोर

पहला गिरमिटिया जैसा चर्चित उपन्यास प्रस्तुत कर चुके गिरिराज किशोर ने अब बा पर कलम उठायी है। बा पर कुछ भी लिखना बहुत कठिन था। उनके बारे में उपलब्ध जानकारियां नहीं के बराबर हैं। 'पहला गिरमिटिया' की सामग्री जुटाने में उन्हें कोई दो हजार पुस्तकों से मदद मिली थी। और 'बा' उपन्यास लिखते समय मुश्किल से दो पुस्तकें सामने थीं। वे उन सब लोगों से मिले, जिन्हें कस्तूरबा के बारे में थोड़ी-सी भी जानकारी थी और उन जगहों पर गये, जहां बा ने थोड़ा या बहुत समय बिताया था। इस तरह बनी यह कथा, यह इतिहास बा के अलावा खुद बापू के दो और रूपों को भी सामने रखता है–पति और पिता का रूप। प्रस्तुत है 'बा' का अगला अंश, जो बा-बापू : 150 के अवसर पर क्रमशः प्रकाशित हो रहा है। –सं.

लार्ड विलिंग्डन, वाइसराय ने गोलमेज बैठक के बारे में बातचीत करने के लिए बापू को शिमला बुलाया था। बा भी उनके साथ शिमला गई थी। अगले दिन लेडी विलिंग्डन, वाइसरायनी ने बा की अगवानी की तो बा को आश्चर्य हुआ। वह सामान्य घरेलू स्त्री, उसकी अगवानी क्यों, वह भी वाइसरायनी द्वारा। दरअसल वाइसरायनी के लिए भी यह पहला अवसर था जब किसी भारतीय नेता की पत्नी को औपचारिक रूप से आमंत्रित करे। ब्रिटिश अफसरों और उनकी पत्नियों की भवें चढ़ गयी थीं। उनके लिए यह तय करना कठिन हो गया जिस महिला की वे उपेक्षा करती रही हैं, वह वाइसरायनी की सम्माननीय अतिथि है, उसके साथ वे कैसे व्यवहार करें?

वाइसरायनी ने कस्तूरबा से कहा, 'क्या आप हथबनी खादी, जिसे मि. गांधी ने अपने देश में आत्मनिर्भर बनाने के लिए प्रचारित किया, मुझे उपलब्ध करा सकती हैं?'

'मुझे बहुत खुशी होगी।'

'उसके माध्यम से मैं भारतीय जनता के संपर्क में आना चाहती हूं। क्या बैंगनी खादी भेज सकती हैं?'

'अवश्य, मैं आपके लिए बहुत सारी बैंगनी खादी भेज दूंगी। लेकिन मेरे मन में एक सवाल है। हमारी हथबनी खादी के जरिए आप भारतीय जनता के निकट कैसे आ पायेंगी? अगर आप इन पहाड़ियों की चोटियों से उतरकर मैदान में जाएं, जहां लोग बड़ी संख्या में बसे हैं, तो उन्हें बेहतर जान सकेंगी।' कस्तूरबा ने बिना लाग-लपेट के सीधे कहा। वाइसरायनी चुप रहीं।

दक्षिण अफ्रीका की भारतीय महिलाओं ने कस्तूरबा के महिला-आंदोलन की सफलता के बारे में जानकर सीधे उनके नाम धन भेजा था, जिससे उन लोगों को कुछ सहायता मिल सके। बा ने भावपूर्ण धन्यवाद का पत्र उन सब आंदोलनकारी महिलाओं को भेजा था। उससे पता चलता है कि देश के बाहर बा को किस दृष्टि से देखा जाता था। मणिलाल ने वह आभार-पत्र इंडियन ओपिनियन में छापा था :

प्यारी बहनों,

मुझे आप लोगों द्वारा इकट्ठे किये गये पचीस पौंड प्राप्त हुए। भारत से इतनी दूर होने के बावजूद आप सब इतना लगाव अनुभव करती हैं, यह बात मेरे मन को छू गई। मैं बहुत आभार व्यक्त करती हूं। मैं आशा करती हूं कि विदेशी सामान प्रयोग में नहीं लाती होंगी। आप कहीं भी रहें, यह न भूलें कि विदेशी सामान से परहेज करें। मैं आशा करती हूं कि आपके व्यवहार और जीवन में भारतीय संस्कृति और परंपरा निहित रहेगी।

कस्तूरबा गांधी

1931 में लंदन में आयोजित गोलमेज बैठक असफल हो गयी थी। इसका नतीजा हुआ कि देश में विरोध की ज्वाला फूट पड़ी थी। देखते-देखते देश में सविनय अवज्ञा आंदोलन फैल गया था। गोरी सरकार कांग्रेस को कुचलने पर उतर आई थी। कांग्रेस द्वारा संचालित सांस्कृतिक कार्यक्रमों तक पर सरकार की टेढ़ी नजर हो रही थी। गांधी का प्रभाव कम करना ही एक मात्र ध्येय था। यहां तक कि कुछ राज्यों में गांधी के चित्र छापने पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया था। वे पुस्तकें जब्त हो रही थीं जो सरकार की नजर में आपत्तिजनक थीं। देश-भर में सेंसरशिप लागू थी। जगह-जगह तलाशियां हो रही थीं। जनाधिकार निलंबित कर दिये गये थे। लगभग पंद्रह हजार भारतीयों को जनवरी महीने में बंदी बना लिया गया था। यहां तक कि महिलाओं तक को बंदी बनाकर जेल भेजा जा रहा था।

कस्तूर पहली महिला थी जिसे गिरफ्तार किया गया था। दक्षिण अफ्रीका में भी कस्तूरबा ने ही सबसे पहले सत्याग्रह करके साथियों के साथ गिरफ्तारी दी थी। अपनी धरती पर जेल जाने का यह पहला अवसर था। सब बंदी बनाई गई महिलाओं को साधारण सजा न देकर सख्त सजा सुनाई गई थी। कस्तूरबा चूंकि जानी-पहचानी थी, देश में सम्मान था, इसलिए कम उम्र की महिला कैदियों के मुकाबले कुछ-कुछ छूट दी थी।

बा को सबसे ज्यादा चिन्ता बापू की थी। जैसे ही बा जेल से छूटी, बापू से मिलने यरवदा जाने लगी। उन्हें बताया गया कि बापू मुलाकातियों से मिल नहीं रहे हैं। बा ने उसी

जेल में बंद देवदास को पत्र लिखा। बापू ने जवाब दिया, 'जेल का मतलब अधिकारों का निलंबन। क्योंकि चिट्ठियां भेजने और पाने में अनेक समस्याएं आ रही थीं इसलिए उन्होंने मुलाकातियों से भी मिलना बंद कर दिया।' बा को इस जवाब से धक्का लगा। बा ने इस तरह के हादसे सहन किये थे, आगे भी करने थे। बापू का कहना था जो मेरे साथ जुड़े हैं, उन्हें उसके लिए मूल्य चुकाना पड़ता है। इसलिए बा को और बच्चों को सबसे ज्यादा मूल्य चुकाना पड़ता था। गर्मियों में बापू ने कांग्रेस और लोगों के जोर देने के कारण मुलाकातियों से मिलना शुरू किया था पर उनमें बा सम्मिलित नहीं थी। इसी बीच बा गिरफ्तार हो गई, इस बार भी छह महीने की सजा हुई। फिर वही साबरमती जेल।

सितंबर के महीने में बापू का पत्र आश्रम के पते पर पहुंचा। लिफाफे पर लिखा था कि इस पत्र को बा के पास पहुंचा दिया जाये। उसमें लिखा था :

'तुमने मेरे उपवास के बारे में सुना होगा, तनिक भी नहीं डरना। दूसरी महिलाओं को भी डरने से रोकना...मैं समझता हूं, तुम मेरे साथ चालीस साल से रह रही हो, सब समझ सकोगी।'

दरअसल ब्रिटिश हुकूमत नया कानून बना रही थी। जिसके तहत धर्मों को बांटकर हिन्दू, मुस्लिम, सिक्खों को अलग-अलग मताधिकार ही नहीं दिया जा रहा था, बल्कि हिन्दू दलितों के लिए भी अलग मताधिकार का प्रावधान किया जा रहा था। अंग्रेजों का विचार था अगर सबके बीच थोड़ी-थोड़ी सत्ता बांट दी जायेगी तो बड़ी सत्ता उनके पास बनी रहेगी। उनके लिए कुछ और अधिक समय तक शासन करना संभव होगा। बापू इस बात को समझ रहे थे पर उन्होंने हिन्दू में से हिन्दू को काटने की अंग्रेजों की इस भेद नीति का विरोध करने के लिए आमरण अनशन आरंभ कर दिया था। वे जानते थे कि हिन्दुओं ने दलित वर्ग के प्रति सदा अन्याय किया है, जैसा उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में स्थानीय और बाहरी लोगों के साथ होते देखा था। वे नहीं चाहते थे कि अंग्रेज इस प्रावधान का इस्तेमाल करके इस मजबूत, पर कमजोर होते, बंधन की बीच से दो फाड़ कर दें। वे जाति, धर्म और वर्ण के आधार पर हुए भेद भाव के विरुद्ध थे। उन्होंने अपने बचपन से लेकर अब तक जीवन के अनुभव और डॉ. भीमराव अम्बेडकर के संघर्ष से सीखा था। इस पीड़ा को वे दक्षिण अफ्रीका में अनुभव करते थे। वे चाहते थे कि जिस घर को सदियों के भेदभाव और रुग्ण मानसिकता ने तोड़ा है उसे मिलकर बचाएं, संवारें। जाति वर्णों के स्तर पर बांटने का काम सदियों से सवर्ण हिन्दू करते आये हैं, जो थोड़ा बहुत बचा है, उसे यह कनून सदा के लिए तोड़ देगा। वे इसीलिए आमरण अनशन कर रहे थे कि हिन्दुओं की आत्मा जागे, उनके द्वारा किये गये अन्याय और शोषित वर्ग के विद्रोह को पहचानें। अपने व्यवहार को बदलें।

बा को उपरोक्त पत्र लिखते समय बापू आश्वस्त थे कि वह इस बात को समझेंगी कि अनशन वे मानवता को बंटने से बचाने और सबको जोड़े रखने के लिए कर रहे हैं। वह इस बात को भी समझेंगी कि यह सवाल, चाहे कोई किसी रूप में ले, एक ऐसा सच है जो हर कौम के मरने-जीने से जुड़ा है।

जब कस्तूरबा-बापू से मिलने यरवदा जेल पहुंची तो वे अंदर के आंगन में, आम के पेड़ की छाया में, सफेद लोहे के पलंग पर शांत और स्थिर लेटे थे। नौ महीने बाद इन्हें देखा था, वह भी इस हालत में। बा पहली नजर में समझ गईं कि उनकी हालत तेजी से बिगड़ रही है। जीवन खतरे में है। उन्होंने अपने को संभाला, हमेशा की तरह शांत और संतुलित रही। किसी तरह की उत्तेजना या दुःख प्रकट नहीं किया। धीरे से बुदबुदाई, 'फिर वही कहानी।' परिचर्या की पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली।

26 सितंबर, 1932 को उनका स्वास्थ्य तेजी से गिरने लगा। रक्तचाप निचले बिन्दु पर, 110 पौंड से गिरकर 95 पौंड पर आ गया था। चेतनता में भी कमी आती जा रही थी। बा आते ही बिना परेशान हुए उनकी सेवा में लग गई थी। तलवे सहलाने लगी थी। सब कुछ ऊपर वाले पर छोड़कर निश्चिन्त हो गई थी। पृथक मताधिकार के प्रश्न पर दोनों पक्षों के वार्ताकार सुलह सफाई की बात करने में लगे थे। तनाव बढ़ता जा रहा था। डॉ. अम्बेडकर अपनी मांग पर अड़े थे। उधर बापू की हालत ऐसी थी कि कभी भी कुछ भी हो सकता था। सरकार भी तनाव में आ गई थी। कुछ हो गया तो देश में क्या होगा, उसका अंदाज लगाना असंभव था। ठीक दोपहर बाद, डरे हुए और तनावग्रस्त वार्ताकार, किसी तरह सहमति पर पहुंचने पर कामयाब हो गये।

एक रास्ता निकल आया था कि अलग मताधिकार देने के स्थान पर दलितों को आरक्षित चुनाव क्षेत्र दिये जायेंगे। उम्मीदवार दलित होंगे और सब वर्ग उनमें से ही किसी एक को अपना मत देकर जितायेंगे...। मन भेद की जगह सहृदयता का विस्तार होगा। वही यरवदा पैक्ट माना गया। उसमें एक अभूतपूर्व घोषणा सम्मिलित थी कि आज के बाद कोई भी अछूत नहीं माना जायेगा। बापू को जब बताया गया तो उन्होंने अस्फुट स्वर में कहा, 'यही मेरा संकल्प है, मैं रहूं या न रहूं, पर यह रहे।'

बापू के उपवास खोलने का समय आ गया था। बा बापू की खाट के पास संतरे का रस लिये खड़ी थी। लोग प्रतीक्षा में थे बापू कब उपवास खोलते हैं। बा ने एक हाथ से सहारा देकर कोहनी के बल उठने में उनकी सहायता की, और दूसरे हाथ से रस का गिलास उनके होंठों से लगा दिया। पहली घूंट भरते ही जैसे देश के लोगों की रुकी हुई सांस बाहर आई, राहत और खुशी की लहर हर तरफ फैल गई। बा का गिलास जैसे द्रोपदी का पात्र बन गया था। बापू ने अपने चारों ओर देखा। सबकी आंखें नम थीं और चेहरों पर राहत का भाव था।

...क्रमशः अगले अंक में

विधायिका में महिला आरक्षण : एक अंतहीन प्रतीक्षा

❑ कनक

आम चुनाव की प्रक्रिया जारी है। एक-दूसरे पर अभद्र टिप्पणियों और उपलब्धियों के बड़बोले दावों और जाति, धर्म के नाम पर वोट मांगने, उकसाने का दौर भी जारी है। जनता की बुनियादी समस्याओं की चर्चा लगभग नहीं हो रही है। ऐसे में महिलाओं का सवाल एक बार फिर हाशिये पर है तो इसमें अचरज की कोई बात नहीं है। मगर यही मौका है कि हम धरती पर स्वर्ग उतार लाने के वायदे कर रहे नेताओं और दलों को याद दिलाएं कि विधायिका में महिलाओं के लिए आरक्षण के वायदे का क्या हुआ, जो आप सबों ने कर रखा है।

आज से 72 वर्ष पूर्व हमने आजाद भारत में लोकतंत्र की यात्रा शुरू की थी। तब लोकसभा में 5 से 6 प्रतिशत महिलाएं थीं। मगर इतने अंतराल के बाद भी निवर्तमान सोलहवीं लोकसभा में 12% महिलाएं ही हैं। आजादी की लड़ाई में तो बड़ी तादाद में महिलाएं शामिल थी हीं, आजाद भारत में भी अलग अलग मुद्दों पर अनेक आंदोलन हुए और कमोबेश सब में महिलाएं शामिल हुईं। 74 में व्यवस्था में बुनियादी बदलाव के लिए एक बड़ा प्रभावी आंदोलन हुआ, जिसमें बड़ी संख्या में महिलाओं की भागीदारी थी। घर का दायित्व निभाते हुए महिलाओं ने अपनी सामाजिक जवाबदेहियों का भी बखूबी निर्वाह किया। उसके पहले ही 1973 से शुरू होकर 1975 तक एक सशक्त महिला आंदोलन उठ खड़ा हुआ, जिससे महिलाओं की स्थिति में उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ। उन्हें नौकरियों में आरक्षण मिला, शैक्षणिक सुविधाओं का लाभ मिला और फिर सभी राजनीतिक, गैर राजनीतिक दलों की मजबूरी बनी कि वे हर कार्य व्यापार और राजनीति में महिलाओं की भागीदारी को स्वीकार करें।

मगर अफसोस कि आज भी विधायिका में महिलाओं की स्थिति में संख्या और अनुपात के लिहाज से अपेक्षित बदलाव नहीं आया है। आधी आबादी होने के बाद भी वर्तमान लोकसभा, जिसका कार्यकाल समाप्त होने को है, में मात्र 12%; महिलाएं हैं। इस मामले में विश्व के 193 देशों में भारत 153वें स्थान पर है!

यह तो सर्वज्ञात ही है कि विधायिका में महिलाओं को आरक्षण देने संबंधी विधेयक दशकों से लंबित है। यह मामला बार-बार उठता तो है, मगर सिर्फ चुनावों के दौरान। वह भी महज खानापूरी के तौर पर। अधिकतर दलों के लिए यह महत्वहीन ही रहता है। संसद में इसे पारित न करने देने की कुटिल राजनीति चलती रही है। इससे साबित हो गया है कि आज तक स्त्री के विकास की, उसे बराबरी और सम्मान देने की सारी बातें दिखावटी हैं। आमतौर पर कोई भी स्त्रियों की भागीदारी नहीं चाहता। सामाजिक न्याय के घोषित हिमायती भी इस न्याय और आरक्षण को केवल पुरुषों के लिए ही बनाये रखना चाहते हैं। जब एचडी देवेगौड़ा की सरकार ने महिला आरक्षण बिल सदन में पेश किया तो अपनी ही पार्टी और समर्थकों के जबरदस्त विरोध के कारण वापस भी ले लिया। फिर जब एनडीए की सरकार आयी तो उम्मीद थी कि यह विधेयक पास होगा। भाजपा घोषित रूप में इसके पक्ष में थी, कांग्रेस और वाम दल विधेयक के समर्थन में थे। मगर इतनी अनुकूलताओं के बाद भी यह धाराशायी हो गया। सदन में हंगामा हुआ, अभद्र असंसदीय आचरण देखने को मिला और इसे स्थगित कर दिया गया। खुद ही लाये गये विधेयक के प्रति सरकारों व सत्तारूढ़ दल का रवैया आश्चर्यजनक था। उनके अपने ही सांसद किसी न किसी बहाने इसके विरोध में खड़े हो गये। इस तरह राज्यसभा से पारित हो जाने के बाद भी यह विधेयक लोकसभा की मंजूरी का इन्तजार करता रह गया।

इतिहास गवाह है कि जब स्त्रियों के अधिकारों की बात आती है तो सभी इसके विरोध में एकजुट हो जाते हैं। महिला आरक्षण विधेयक इसी पुरुष मानसिकता का शिकार हुआ। कोई महिला यदि महिला हितों की बात करेगी तो उसे फैशनेबल महिलाओं का सवाल घोषित कर दिया जायेगा। महिला आरक्षण विधेयक में दलित, मुस्लिम या पिछड़े वर्ग की महिलाओं का कोटा निर्धारित करने की मांग करनेवाले सामाजिक न्याय के स्वयंभू ठेकेदारों ने हमेशा अपने वर्ग की महिलाओं को पीछे धकेला है। जब आरक्षण के सिद्धांत को एक बार जातिगत आधार पर स्वीकार किया गया, तो मलाईदार परत या आर्थिक सीमा वगैरह की बातें नकार दी गयीं पर जब स्त्री, पुरुष गैर बराबरी के आधार पर स्त्रियों को आरक्षण देने की बात आयी तो जातिगत आधार की बात उठा कर इसे भ्रमित करने की कोशिश की गयी। इसके पीछे मूल मकसद किसी तरह इस विधेयक को टालना ही था।

वरना जिस तरह महिला विधेयक पर बहस के दौरान औरतों का हवाला देकर पिछड़े, दलित और अल्पसंख्यक वर्गों की महिलाओं के कोटे व आरक्षण का औचित्य जबरदस्ती स्थापित किया गया है, उसी तरह अब तक हर तरह की राजनीति के अलावा नौकरी और शिक्षा के आरक्षण में प्रत्येक स्तर पर स्त्रियों का कोटा सुनिश्चित करने की मांग क्यों नहीं हुई? क्या आज तक दलितों, पिछड़ों और अल्पसंख्यकों के नाम पर पुरुष ही सारी सुविधाएं नहीं लेते रहे?

अन्य एशियाई देशों में समाज और राजनीति पर पुरुषों का वर्चस्व रहा है, मगर वहां भी न सिर्फ सत्ता में, बल्कि बड़े व स्थापित राजनैतिक दलों के शीर्ष पर महिलाएं विराजमान हैं। दरअसल हमारे दिलों में वही औरत राज करती है, जिसका अपना कोई

व्यक्तित्व नहीं होता। भारत समेत समस्त एशिया में स्त्री को पुरुष की छाया में देखने की आदत है। अगर वह सत्ता में भी है तो या तो पुरुष की सरपरस्ती में हो या पुरुष जैसी हो। समतावादी विचार रखने वाली एक स्वतंत्र और भेदभाव पर बनी दुनिया को सिर्फ अपने लिए नहीं, समाज के लिए बदल देने को तत्पर रहने वाली स्त्री यहां पसंद नहीं की जाती। प्रायः देखा जाता है कि राजनीतिक जीवन में कोई भी स्त्री तभी सफल रही, जब उसे किसी पुरुष का संरक्षण मिला। हमारे यहां परिवारवाद का बोलबाला है और परिवार के उत्तराधिकारी के रूप में अगर कोई स्त्री सामने कर दी जाती है तो उसे स्वीकार कर लिया जाता है। इंदिरा गांधी, बेनजीर भुट्टो, श्रीमती भंडारनायके, शेख हसीना वाजेद और अंग सान सूकी जैसी तमाम कद्दावर औरतों को सत्ता एक तरह से उत्तराधिकार में मिली, हालांकि इनको इसके लिए कठिन संघर्ष करना पड़ा। ये पति या पिता की राजनीतिक सत्ता की उत्तराधिकारी बनीं और बाद में अपने पिता या पति से बड़ी या कम से कम कम से कम बराबरी की हैसियत बनाने में सफल हुईं। भारत में कई राज्यों में महिला मुख्यमंत्री रह चुकी हैं। इन्होंने स्थापित सामाजिक जातीय संरचना के ढांचे को तथा पुरुषवादी समाज को बदलने में कोई रुचि नहीं दिखाई ना कोई जिम्मेदारी निभाई।

इसीलिए कतिपय औरतों ने भले बार बार अपनी क्षमता साबित की है, समाज उन्हें स्वतंत्र हैसियत में नहीं स्वीकार करता। इक्का दुक्का अपवादों को छोड़ दें तो समाज का सहज प्रवाह स्त्रियों की स्वतंत्र हैसियत को अस्वीकार करता है। घर की देहरी लांघने वाली औरतों को दुश्चरित्र और कुलटा मानता है। आदिवासी समाज में जहाँ स्त्रियां बेहतर स्थिति में हैं, वहां भी उनका बैठक में जाना सहज नहीं है। स्थानीय स्वशासन की परंपराओं में स्त्री नगण्य है। भले कुछ अपवाद गिना दिये जाएं। आम भारतीय पुरुष की दिली कामना यही रहती है कि स्त्री पर्दे में ही रहे। भले वह पढ़ी-लिखी हो, आधुनिक हो, कमाने वाली भी हो, पर विचारों में पति की छाया हो। आज महिलाओं का वोट प्रतिशत पहले की तुलना में काफी बढ़ा है, मगर अपेक्षा की जाती है कि वे वोट अपने अभिभावक की इच्छा और इजाजत से ही दें। इसी कारण स्त्रियों के मुद्दे कभी प्राथमिकता से सामने नहीं आ पाते। लोकसभा और विधानसभाओं में उनकी पर्याप्त भागीदारी नहीं हैं। उनका वहां होना सिर्फ आधी आबादी होने के कारण ही जरूरी नहीं है, वह इस लिए भी जरूरी है कि अधिक संवेदनशील विचारों का होना सदन को सही दिशा देगा, गरिमामय और सभ्य बनाएगा।

स्त्रियों के लिए, वे किसी भी दल की समर्थक हों, क्या यह जरूरी नहीं कि वे कठुआ रेप के अपराधियों का हिसाब मांगें? मुजफ्फरपुर महिला आवास में हुए बच्चियों के यौन उत्पीड़न के दोषियों का हिसाब लें? कांग्रेस समेत जिन राजनैतिक दलों ने महिला आरक्षण के समर्थन का वादा किया था, वे संशय में क्यों है? बीते पांच वर्षों में भाजपा ने क्यों इसे पारित करने का प्रयास नहीं किया? सवर्ण आरक्षण लागू करने में तो कोई बाधा नहीं मानी गई। तो महिला आरक्षण क्यों बार बार इनकी चालाकियों की मार झेले? यह सभी महिलाओं का मुद्दा क्यों नहीं बने? पिछले चुनाव में निर्भया फंड व रेप की शिकार महिलाओं के संरक्षण और मदद की बहुत बातें की गयीं। मगर आज महिलाओं के साथ हिंसा में लगातार बढ़ोत्तरी हो रही है। लेकिन इसकी चर्चा तक नहीं हो रही! निर्भया फंड का पूरा उपयोग नहीं हो रहा, यह मुद्दा क्यों नहीं है?

यह चुनाव भी हर बार की तरह स्त्रियों के मुद्दों से बेपरवाह है। स्त्रियां उम्मीदवार के रूप में संभवतः पहले से भी कम हैं। मगर वे बड़ी संख्या में वोट देने निकल रही हैं। जब वे अपनी समझ का इस्तेमाल कर सकेंगी, तभी पूछ सकेंगी कि सवर्ण आरक्षण कैसे संविधान संशोधन करके भी न सिर्फ पास हुआ, बल्कि लागू भी हो गया, मगर महिला आरक्षण विधेयक सभी दलों की मिलीभगत से अब तक क्यों लटका हुआ है? सभी दलों में महिला उत्पीड़न व हिंसा के अपराधी कैसे प्रश्रय पा जाते हैं। महिलाओं को अपमानित करने वाले वक्तव्य देने वालों को पार्टी के नाम पर बचाने वाले कौन लोग हैं? हम पूछ सकते हैं कि मुजफ्फरपुर कांड से चर्चित और संदिग्ध राज्य की पूर्व मंत्री बेगूसराय के भाजपा उम्मीदवार के साथ मंच पर कैसे दिख जाती हैं?

यह सवाल जोर से उठाना ही पड़ेगा कि ये दल और नेता स्त्रियों के राजनीतिक अधिकार पर कब तक कुंडली मार कर बैठे रहेंगे? और कितने वर्षों तक यह छल चलता रहेगा? औरतों को यह हक लेना ही है। देश में नीति निर्धारण और महत्वपूर्ण निर्णय लेने में स्त्रियों की भागीदारी हमारे देश के सम्यक विकास के लिए जरूरी है। राजनीतिक, सामाजिक जीवन में स्त्रियों की अनुपस्थिति के कारण ही देश का माहौल कुसंस्कृत और क्रूर होता जा रहा है। सिर्फ स्त्री के लिए ही नहीं, देशहित में भी राजनीति के हर स्तर पर औरतों की सचेत भागीदारी जरूरी है। इसमें संवेदशील और समानता के पक्षधर पुरुषों की भी अहम् भूमिका होगी। लेकिन इसकी अगुवाई तो महिलाओं को ही करनी होगी। तभी हमारा लोकतंत्र भी सबल, सुन्दर और सम्पूर्ण होगा। ❑

अधिसूचना

सर्व सेवा संघ के नये न्यासी

1. डॉ. सोमनाथ रोडे (महाराष्ट्र)
2. डॉ. मधुसूदन (उत्तर प्रदेश)
3. भवानी शंकर कुसुम (राजस्थान)
4. डॉ. जोस मैथ्यू (केरल)

प्रदेश सर्वोदय मित्र मंडल के नव-नियुक्त संयोजक

1. श्री लक्ष्मी दास - दिल्ली
2. डॉ. विश्वानाथ आज़ाद - झारखंड

- महादेव विद्रोही
अध्यक्ष, सर्व सेवा संघ

युद्ध के दुष्परिणाम और बच्चों पर पड़ने वाले प्रभाव!! जंग कराने वाले नहीं बताते!

❑ परवेज़ ख़ान

युद्ध कभी भी किसी भी समस्या का हल नहीं है। जो देश युद्ध लड़ रहे हैं, वह इसकी भारी कीमत चुका रहे हैं। विस्तारवादी मानसिकता वाले कुछ बड़े देश मध्य एशिया में शीत युद्ध की समाप्ति के बाद अपने लाभ के लिए लड़ रहे हैं। अमेरिका और रूस दोनों महाशक्ति अरब के देशों में युद्ध लड़ रहे हैं, यह युद्ध इन दोनों देशों की नूराकुश्ती समान है। दोनों महाशक्तियों को अरब का मैदान मिला हुआ है, यहाँ ये देश अपने लाभ की जंग लड़ रहे हैं। इनके बनाये हथियारों का परीक्षण, प्रदर्शन इसमें हो जाता है, शक्ति का प्रदर्शन कर दुनिया के अन्य देशों को ये अपने हथियारों का ग्राहक बनाते हैं।

हम जो कुछ देखते हैं उस के आलावा भी देखने के लिए बहुत कुछ होता है, जो दिखाई नहीं देता है और जिसे दिखने नहीं दिया जाता है। भारत पाकिस्तान के बीच शुरू से झगड़ा बना रहा है, बंटवारे के दो महीने बाद ही पाकिस्तान ने कश्मीर पर कब्ज़ा जमा लिया था, भारत ने बांग्लादेश को आज़ाद करवाया। दोनों देशों के बीच दुश्मनी की 'खाई' को बढ़ने नहीं देना चाहिए, युद्ध हल नहीं समस्या को बढ़ाने वाले होते हैं।

इस समय इस स्थिति को इराक, सीरिया और यमन में देखा जा सकता है। इन युद्धों में सबसे अधिक महिलाएं और बच्चे प्रभावित हुए हैं और उनको सबसे अधिक नुकसान पहुंच रहा है। अरब देशों में जो युद्ध जारी हैं, विभिन्न रूपों में उनके प्रभाव बच्चों पर पड़े हैं। उदाहरण स्वरूप यूनिसेफ ने मार्च 2016 में घोषणा की है कि युद्ध से विभिन्न रूपों में सीरिया के 84 लाख बच्चे प्रभावित हुए हैं। युद्ध के कारण लगभग 70 लाख सीरियाई बच्चे निर्धनता में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। यूनिसेफ ने सितंबर 2015 में घोषणा की थी कि युद्ध के कारण इराक में भी 82 लाख लोग प्रभावित हुए हैं, जिनमें 37 लाख बच्चे थे।

अरब देशों विशेषकर सीरिया में युद्ध के कारण जो परिणाम सामने आये हैं, उन्हें दो भागों में बांटा जा सकता है—एक आभास किये जाने वाले और दूसरे आभास न किये जाने वाले प्रभाव। एक युद्ध में असैनिकों को सैनिकों से अलग करना कठिन कार्य है। इसी कारण युद्ध का एक परिणाम बच्चों की हत्या और उनका घायल होना है और यह वह परिणाम है जिसका आभास किया जा सकता है। ऑक्सफोर्ड जांच दल ने वर्ष 2013 के अंतिम दिनों में एक रिपोर्ट प्रकाशित करके घोषणा की थी कि सीरिया संकट के दौरान 11 हज़ार बच्चे मारे गये हैं, जिनमें 70 प्रतिशत बच्चों की हत्या विस्फोटक हथियारों से हुई जबकि 389 बच्चे फायरिंग में मारे गये और 764 बच्चे भोजन के अभाव में मार दिये गये। सात साल से कम आयु के 100 से अधिक बच्चे दी जाने वाली यातना से मर गये।

यूनिसेफ ने अपनी अंतिम रिपोर्ट में सीरिया संकट में मरने वाले बच्चों की संख्या लगभग 12 हज़ार घोषित की है। यूनिसेफ ने 'बच्चों के लिए कोई स्थान नहीं' शीर्षक के अंतर्गत घोषणा की है कि वर्ष 2015 में खुल्लम-खुल्ला 1500 सीरियाई बच्चों के अधिकारों का हनन हुआ जिनमें से 60 प्रतिशत से अधिक की हत्या की गयी। इनमें एक तिहाई से अधिक बच्चों की हत्या उस समय की गयी जब वे स्कूल में थे, या स्कूल से लौट रहे थे। ग़ाज़ा पट्टी पर वर्ष 2008 में जायोनी ने जो हमला किया था उसमें केवल 350 फिलिस्तीनी बच्चे मारे गये थे, ग़ाज़ा पट्टी में शैक्षणिक संस्थाओं की यूनियन ने घोषणा की है कि जायोनी शासन ने वर्ष 2014 में जो 50 दिवसीय ग़ाज़ा युद्ध आरंभ किया था, उसमें 2200 लोग शहीद हुए थे, जिसमें 50 प्रतिशत बच्चे और छात्र थे और उस युद्ध में 2385 फिलिस्तीनी बच्चे व छात्र घायल भी हुए थे।

युद्ध का एक दुष्परिणाम बच्चों और महिलाओं का बेघर होना है जो युद्ध से पीड़ित देशों की मूल जनसंख्या होते हैं। वास्तव में लोगों के स्थानांतरण और उनके बेघर होने का एक मूल कारण युद्ध है। बेघर होना देश के भीतर और बाहर दोनों हो सकता है। यूनिसेफ ने मार्च 2016 में घोषणा की थी कि इस समय सीरिया में बेघर होने वालों की संख्या वर्ष 2012 में बेघर होने वालों की अपेक्षा लगभग 10 गुनी है जिनमें आधे बच्चे हैं। सीरिया संकट में 76 लाख से अधिक बच्चे देश के भीतर बेघर हुए। सीरिया के बाहर जो 40 लाख लोग बेघर हुए, उनमें लगभग आधे बच्चे हैं। 15 लाख से अधिक बच्चे सीरिया की सीमा से अकेले बाहर निकल गये।

इसी प्रकार यूनिसेफ ने वर्ष 2015 के जाड़े में घोषणा की थी कि 10 लाख से अधिक इराकी बच्चे इस देश में युद्ध व हिंसा के कारण बेघर हो गये। बेघर होना स्वयं में एक बड़ी पीड़ा है और साथ ही वह अपने साथ बड़ी पीड़ा लाती है, जैसे खाद्य पदार्थों की कमी, छुआछूत और गैर छुआछूत की बीमारियां, यौन शोषण और परिवारों से बिछड़ जाना आदि। यह सब सीरिया, इराक, यमन और फिलिस्तीनी बच्चों की पीड़ाएं हैं। बच्चों पर युद्ध का आभास किया जाने वाला एक दुष्परिणाम उनसे जबरदस्ती काम कराना या आमदनी के लक्ष्य से हथियार बंद गुटों द्वारा उनसे काम लेना है। संयुक्त राष्ट्र की मानवाधिकार परिषद के हाईकमिश्नर ने अपनी एक रिपोर्ट में घोषणा की है कि दाइश ने इराक के मूसिल नगर में बच्चों के प्रशिक्षण के लिए कम से कम चार बड़े केन्द्र बनाये हैं और वह समूचे इराक से बच्चों का अपहरण करके इन केन्द्रों में उन्हें प्रशिक्षण देता है।

यूनिसेफ की रिपोर्ट के अनुसार सीरिया युद्ध के आरंभिक वर्षों में सशस्त्र गुटों ने जिन बच्चों से काम करवाया, उनमें से अधिकांश की उम्र 15 साल से कम थी जबकि इन गुटों ने वर्ष 2014 में 15 साल से कम उम्र के बच्चों, यहां तक कि सात साल तक के बच्चों से काम लिया। वर्ष 2015 में सशस्त्र गुटों ने जिन बच्चों से काम लिया, उनमें आधे से अधिक की उम्र 15 वर्ष से कम थी जबकि यह आंकड़ा वर्ष 2014 में 20 प्रतिशत से कम था। आतंकवादी गुटों ने एसी स्थिति में बच्चों से जबरदस्ती काम कराया जबकि वर्ष 1989 में बच्चों के कन्वेन्शन के 38 वें अनुच्छेद में आया है कि सशस्त्र बलों में 15 साल से कम उम्र के बच्चों से काम लेना मना है। इसी प्रकार जब 15 वर्ष से ऊपर और 18 साल से कम उम्र के बच्चे हों तो इन देशों को चाहिये कि वे अधिक उम्र वालों से काम लेने को प्राथमिकता दें।

युद्ध का एक दुष्परिणाम खाद्य पदार्थों की कमी और बच्चों सहित बहुत से लोगों को कुपोषण का सामना करना पड़ता है। उदाहरण स्वरूप दो करोड़ 12 लाख यमनी लोगों का खाद्य पदार्थों की कमी से सामना है, जबकि 3 लाख 20 हज़ार यमनी बच्चों का कुपोषण से सामना है। यही हालत इराक, सीरिया और फिलिस्तीनी बच्चों की भी है। बच्चों को गिरफ्तार कर लेना भी युद्ध का आभास किया जाने वाला एक दुष्परिणाम है। यह चीज़ विशेषकर फिलिस्तीनी बच्चों में देखी जा सकती है। उदाहरण स्वरूप अक्सा इंतेफाज़ा आरंभ होने के समय से यानी 28 सितंबर वर्ष 2000 से मई 2016 तक 90 हज़ार से अधिक फिलिस्तीनियों की गिरफ्तारी दर्ज की गयी जिनमें 11 हज़ार की उम्र 18 साल से कम है।

वर्ष 2016 के आरंभिक 3 महीनों में जायोनी ने 18 वर्ष से कम उम्र के लगभग 1400 लोगों को गिरफ्तार किया। बच्चों पर जंग के सबसे बड़े कुप्रभाव में से एक जो महसूस नहीं होता, उनका शिक्षा से वंचित होना है। बच्चों का बेघर होना, मदरसों, स्कूलों का ध्वस्त होना, शिक्षकों का बेघर होना और बच्चों के फ़ोर्स के रूप में जंग में इस्तेमाल के कारण वे शिक्षा के अधिकार से वंचित हो जाते हैं।

संयुक्त राष्ट्र बाल अधिकार कोष यूनिसेफ़ ने सितंबर 2015 में एक रिपोर्ट में कहा है कि सीरिया, इराक़, लीबिया, यमन, फिलिस्तीन और सूडान में जंग के नतीजे में 1 करोड़ 30 लाख से ज्यादा बच्चे शिक्षा से वंचित हैं। इन छह देशों में 8500 से ज्यादा स्कूल हिंसा के कारण बंद पड़े हैं। सीरिया में हर चार में एक स्कूल जंग के शुरू होने के समय से बंद पड़ा है। सीरिया में 52 हजार से ज्यादा शिक्षकों ने अपने पेशे को छोड़ दिया है। आतंकवादी बच्चों, शिक्षकों और शिक्षा क्षेत्र के कर्मचारियों का अपहरण करके उन्हें यातना देते हैं। 2004 के आंकड़ों के अनुसार, सीरिया में पुरुषों और औरतों में शिक्षा दर क्रमशः 86 और 73.6 फ़ीसद थी। लेकिन मौजूदा आंकड़े दर्शाते हैं कि इस समय सीरिया में 43 लाख में लगभग 28 लाख बच्चे स्कूल नहीं जा रहे हैं हालांकि वे प्राइमरी और माध्यमिक पाठयक्रम में दाखिले के लिए ज़रूरी शर्त पर पूरे उतरते हैं। ह्यूमन राइट्स वॉच ने नवंबर 2015 में एक रिपोर्ट में कहा है कि तुर्की में 20 लाख से ज्यादा सीरिया के शरणार्थी हैं। इनमें 7 लाख 8000 बच्चों की स्कूल जाने की उम्र है जबकि 4 लाख बच्चे तुर्की में स्कूल नहीं जाते हैं।

संयुक्त राष्ट्र बाल अधिकार कोष यूनिसेफ़ ने 2015 में उल्लेख करते हुए कहा कि इराक़ में लगभग 20 लाख बच्चे शिक्षा से वंचित रहे हैं, इस देश में हिंसा जारी रहने की स्थिति में जल्द ही 12 लाख और बच्चे शिक्षा से वंचित बच्चों की सूची में शामिल हो जाएंगे। इराक़ के 10 लाख बेघर बच्चों में लगभग 70 फ़ीसद स्कूल जाने से वंचित रहे हैं और 5300 से ज्यादा स्कूल व शैक्षणिक प्रतिष्ठानों को नुक़सान पहुंचा है या ये प्रतिष्ठान शरणार्थियों को शरण देने के लिए इस्तेमाल हो रहे हैं। जंग का एक और कुपरिणाम जो दिखाई नहीं देता, वह मनोवैज्ञानिक प्रभाव है। मनोवैज्ञानिक प्रभाव और जंग के दूसरे प्रभाव के बीच अंतर यह है कि मनोवैज्ञानिक प्रभाव लंबे समय तक शेष रहता है। मिसाल के तौर पर ग़ाज़ा पट्टी शैक्षणिक संघ की 2016 की रिपोर्ट में आया है कि 2014 में 50 दिवसीय ग़ाज़ा जंग के दो साल गुज़रने के बाद भी 5 लाख से ज्यादा बच्चे और छात्र इस सैन्य अतिक्रमण से उत्पन्न मानसिक पीड़ा से ग्रस्त हैं।

अनाथ होना, यौन हिंसा और उसके कुप्रभाव, समाज से कट जाना, सांस्कृतिक टकराव, बीमारी, स्थानीय लोगों के भेदभावपूर्ण व्यवहार और जबरन शादी, बच्चों पर जंग के मानसिक व लंबे समय तक रहने वाले सबसे ख़तरनाक परिणाम हैं। जंग से बच्चों के प्रभावित होने के बारे में जो बात अहम है, वह यह कि अंतर्राष्ट्रीय संगठन और दुनिया के देशों पर बच्चों के अधिकार की रक्षा की जिम्मेदारी है लेकिन वे बच्चों की रक्षा के संबंध में अपने मानवीय कर्तव्य को कम ही अंजाम देते हैं। जंग के दूसरे बुरे परिणामों में बच्चों और महिलाओं पर बलात्कार के लिए हमला भी है, जिसका सामाजिक स्तर पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। हालांकि इस सामाजिक समस्या की आंकड़े के आधार पर समीक्षा नहीं हो सकती लेकिन आबादी के बहुत बड़े भाग के बेघर होने के मद्देनज़र महिलाओं और लड़कियों के साथ बलात्कार की घटना से इंकार नहीं किया जा सकता।

आज जहाँ कहीं भी जंग हो रही है वहां के हालात बयान करने में भी तकलीफ होती है, म्यांमार से लेकर फिलिस्तीन तक इंसानी लाशों के अम्बार लगे हैं, एक एक कब्र में दर्जनों लाशें हैं। जंग की जरूरत, जब इंसान जंगलों में रहता था तब थी, आज जंग की नहीं बल्कि अमन की ज़रूरत है। मुल्कों की पॉलिसी जनता की सहूलियतों के लिए होनी चाहिए, न कि अपने राजनैतिक और निजी हितों की पूर्ति के लिए। भारत और पाकिस्तान कभी एक देश थे, जब जर्मनी एक हो सकता है, नार्थ कोरिया और साउथ कोरिया आपस में बात करने को तैयार हो सकते हैं तो कोशिश करने में क्या बुराई है कि बांग्लादेश, पाकिस्तान और भारत मिल कर एक 'ग्रेट इंडिया' बनें। जनता इधर की हो या सरहद पार पाकिस्तान की, अहसास, जुबान, रंग, क़द, आंखें, बाल, चेहरे एक जैसे हैं। हुकूमतें, सरहद खड़ी करती हैं, हुकूमतें करने वाले जनता से राजनीति करते हैं, न्यूज़ चैनल वाले जंग करते हैं, लेकिन हमें तो मुहब्बतपसंद होना चाहिए। ❑

लोक-विमर्श

यह मतदाता की परीक्षा का समय है

चुनाव का बिगुल बज चुका है। सरकार के किये-अनकिये का हिसाब करने का वक्त आ गया है। आम तौर पर लोग सरकार के पांच साल के कामकाज के आधार पर उसे दोबारा चुनते या नकारते हैं. वैसे भी संसदीय लोकतान्त्रिक प्रणाली में जनता सीधे सरकार नहीं चुनती है, अपना क्षेत्रीय प्रतिनिधि चुनती है; और उनके बहुमत की सरकार बनती है.

जो भी हो, मेरी समझ से इस बार सरकार ने क्या किया या नहीं किया; उसने पिछले चुनाव के दौरान किये वायदों को पूरा किया या नहीं किया, इसके बजाय दूसरे मुद्दे कहीं अधिक महत्वपूर्ण हैं। मुद्दा यह है कि भारत का मौजूदा स्वरुप बना रह पायेगा या नहीं? लोकतान्त्रिक-संवैधानिक संस्थाओं की स्वायत्तता और गरिमा बनी रह पायेगी या नहीं? अब यह सवाल अहम हो गया है कि कोई क्या खाए, क्या पहने, किससे दोस्ती या विवाह करे, यह सम्बद्ध लोग तय करेंगे या किसी विचारधारा विशेष से जुड़े संगठनों के लोग तय करेंगे? ये मुद्दे काल्पनिक नहीं हैं; बीते करीब पांच वर्षों की घटनाओं, सत्ता पक्ष से जुड़े और सरकार संरक्षित संगठनों के व्यवहार से उपजे हैं.

बेशक भारत में लोकतंत्र की जड़ें इतनी कमजोर नहीं हैं कि किसी सरकार की दोबारा ताजपोशी से लोकतंत्र नष्ट हो जायेगा, लेकिन जिस तरह सुप्रीम कोर्ट तक को परोक्ष रूप से धमकी दी जाती रही है, 'आस्था' को संविधान और कानून से ऊपर बताया जा रहा है, उससे यह आशंका प्रबल तो हुई ही है कि वर्तमान सरकार के सत्तासीन होने पर ये मूलतः लोकतंत्रविरोधी प्रवृत्तियां विकराल और बेकाबू रूप ले सकती हैं.

इस सरकार के विकल्प के रूप में जो दल और चेहरे हमारे सामने हैं, उनसे भी कोई खास उम्मीद नहीं बनती. वे पहले भी आजमाये जा चुके हैं और अपने अतीत के कारण भी वे बेहतर विकल्प नहीं दीखते. ऐसे में कहा जा सकता है, कि जनता के पास सांपनाथ या नागनाथ में से एक को चुनने का ही विकल्प है. तो क्या हम 'कोउ नृप होंहि हमहि का हानि' की मुद्रा में चले जाएँ? नहीं. यह राजतन्त्र नहीं है, जहाँ राजा कौन होगा, यह पहले से तय होता था. यह लोकतंत्र है; और यह हम पर, यानी मतदाताओं पर निर्भर है कि हमें कैसी सरकार मिलती है. अच्छा प्रतिनिधि और अच्छी सरकार चुनना हमारा दायित्व है और अधिकार भी. भले ही उपलब्ध विकल्पों में से कोई हमारी सोच और आदर्श के अनुरूप नहीं हो, या कहें- एक सांपनाथ हो और दूसरा नागनाथ, तब भी हमें यह देखना होगा कि उनमें से कौन-सा सांप कम जहरीला है.

सड़क, पुल, अस्पताल, कारखाना या बाँध आदि बनवाना सरकार का काम और दायित्व है, जनता पर एहसान नहीं. इसलिए कोई सरकार अपनी पीठ लाख थपथपाती रहे, चुनाव के समय यह पूछा जाना चाहिए कि पांच साल पहले आपने जो वायदे किये थे, उनमें ये ये पूरे क्यों नहीं हुए। **–श्रीनिवास,** राँची

नहीं मिलता है न्यूनतम वेतन भी

किसी भी समाज, देश, संस्था, और उधोग में काम करने वाले श्रमिकों की अहम भूमिका होती है। मजदूरों के बिना किसी भी औधोगिक ढांचे के खड़े होने की कल्पना नही की जा सकती।

लेकिन आज देश की राजधानी दिल्ली में ही बड़े स्तर पर मजदूरों के साथ अन्याय और उनका शोषण हो रहा है।

जब दिल्ली का अध्ययन करते है तो पाते है कि कुछ छोटे निजी स्कूलों मे कर्मचारी 2500-3000 पर काम करने को विवश है। फैक्ट्री, ऑफिस, दिल्ली मेट्रो, और अन्य जगहों पर भी स्थिति बहुत अच्छी नही है। नांगलोई, मंगोलपुरी, किराड़ी, सुल्तानपुरी, क्षेत्र में 3000-5000 रुपया में काम करने वालों की संख्या लाखो में है कमोबेश यही हालात दिल्ली और एन सी आर में हर जगह हैं। मायापुरी, नारायण, बवाना, नरेला, ओखला जैसे औद्योगिक क्षेत्र में भी 4500-6500 पर काम करने का औसतन आंकड़ा मिला है जबकि यह न्यूनतम वेतन से काफी कम है।

सरकार का रुख भी इस तरह के मामलों में पूरी तरह से ढुलमुल है। दिल्ली मेट्रो में बड़े स्तर पर कॉन्ट्रैक्ट सिस्टम देखने को मिला। आर टी आई के जरिये यह जानकारी मिली कि दिल्ली मेट्रो में काम करने के लिए 12 कंपनियों से हर दिन 150 कर्मचारी लिए जाते हैं लेकिन यह कंपनियां अपने कर्मचारियों को तय न्यूनतम वेतन नही देती है।

एन डी एम सी क्षेत्र में 225 शौचालय हैं और एन डी एम सी इनके लिए 500 रुपया प्रत्येक कर्मचारी प्रत्येक दिन के हिसाब से देती है, लेकिन ठेकेदार 6000-7000 प्रतिमाह के हिसाब से देते हैं। यहाँ भी कर्मचारियों के साथ बड़े स्तर पर शोषण देखने को मिला है। दिल्ली के सुरक्षा गार्डों की बहाली में भी इसी तरह की धांधली है। गार्डों से काम 12 घंटे करवाया जाता है और उन्हें 9,000-10,000 रुपया वेतन मिलता है। उनके अनुबंधों में भी व्यापक पैमाने पर घालमेल देखने को मिला है। जबकि बाकी जगहों पर गार्डों की हालत और ज्यादा दयनीय है, 5500-6500 रुपये ही 12 घंटे का दिया जा रहा है।

श्रमिक कानून में है खामियां-

कोई कर्मचारी कारखानों के मालिक की शिकायत जब श्रम विभाग में करता है तो जबाब आता है कि यह आदमी हमारे यहां काम नही करता है, ऐसी स्थिति में कर्मचारियों के पास कोई सबूत नही होता है और दोषी मालिक व कंपनी को सजा नहीं मिल पाती है।

न्यूनतम वेतन की जानकारी आम लोगों के पास नही होती। सरकार द्वारा सिर्फ खाना पूर्ति की जाती है और न्यूनतम वेतन को विभाग की वेबसाइट पर डाल दिया जाता है। न्यूनतम वेतन कितना है इसका कोई प्रचार प्रसार नहीं किया जाता है। यही नहीं सरकार द्वारा चेक या डाइरेक्ट खाते में ट्रांसफर को अनिवार्य नही बनाया गया है जिस कारण लोगो का बड़े स्तर पर शोषण होता है। एक मजदूर देश के निर्माण में बहुमूल्य भूमिका निभाता है और उसका देश के विकास में अहम योगदान होता है। जरूरी है की हम मजदूर के साथ बड़े स्तर पर हो रहे शोषण और अन्याय के खिलाफ खड़े हों। **–देवेन्द्र भारती**

सामाजिक कार्यकर्ता

गतिविधियां एवं समाचार

कीर्ति मंदिर पोरबंदर की दुर्दशा

जिला सर्वोदय मंडल सतना ने गांधी-150 के सिलसिले में 2 अक्टूबर 2018 से कई कार्यक्रम शुरू किये हैं। ग्राम मठेहना को बापूग्राम का नाम दिया गया है और वहां बेरोजगार युवाओं को खादी ग्रामोद्योग के काम से जोड़ा गया है। यह भी निर्णय लिया गया है कि हमारे कुछ सदस्य गांधीजी से संबंधित स्थानों की यात्रा करें और आमजन को अधिक से अधिक प्रेरणा दें। इस क्रम में पोरबंदर साबरमती, सेवाग्राम तथा राजघाट को चार धाम यात्रा का नाम दिया गया।

इस यात्रा के दरम्यान साबरमती, सेवाग्राम तथा राजघाट जाकर मन विभोर हो गया। लेकिन पोरबंदर कीर्ति भवन जाकर बहुत निराशा हुई। वहां सर्व सेवा संघ द्वारा कस्तूरबा जयंती के अवसर पर दो दिवसीय संगोष्ठी आयोजित की गयी। वहां गांधीजी के चित्र के नीचे दरियां और जूते रखे हुए थे। कस्तूरबा मंदिर की परिक्रमा के दौरान पीछे की तरफ टूटी हुई कुर्सियां और दरियां फेंकी पड़ी थी। यह दृश्य देखकर मन को पीड़ा हुई। यह स्थान सरकार की देखरेख में है। दुनिया भर के लोग यहां बा और बापू की स्मृतियां सहेजने के लिए आते हैं। ऐसे महत्त्वपूर्ण स्थान पर ऐसा कुप्रबंधन पीड़ाजनक और अपमानजनक लगा।

दुखद है कि वहां की मैनेजर ने कहा कि आज किसका जन्मदिन है, हमें नहीं पता। हमारे पास कोई आदेश नहीं आया है। स्वच्छता और परिसर की मर्यादा बनाये रखने की बात पर उन्होंने जवाब दिया कि हम कुछ नहीं कर सकते। बा और बापू का सही अर्थों में मान रखने के लिए उनकी स्मृतियों की सार-संभाल बहुत आवश्यक है।

–अरुण भारतीय, सतना

आदिवासी मजदूरों का चक्का जाम

बड़वानी के पाटी ब्लॉक में नरेगा मजदूरों को चार महीनों से मजदूरी नहीं मिली है। केंद्र सरकार से मध्य प्रदेश सरकार को रु.560 करोड़ की बकाया राशि प्राप्त न हो पाने के कारण नरेगा के भुगतान में मजदूरों को उनकी मेहनत की कमाई से वंचित रखा जा रहा है। महीने भर के धरने-आन्दोलन के बाद भी केंद्र एवं राज्य सरकार की अनदेखी से परेशान आदिवासी मजदूरों ने 10 अप्रैल 2019 को बड़वानी में जिला मुख्यालय के सामने स्टेट हाईवे पर भीषण गर्मी में विशाल चक्का जाम किया। गत 28 फरवरी को देश भर के नरेगा मजदूरों के साथ आदिवासी मजदूरों ने प्रधानमंत्री के ऊपर आदिवासियों से बिना भुगतान के मजदूरी यानी बेगारी कराने के जुर्म में एफआईआर दर्ज करने की मांग की गई थी, जिसके बाद हजारों मजदूरों ने जिला पंचायत को घेर कर अपने बकाया भुगतान की जानकारी मांगी थी। जिला प्रशासन ने आन्दोलनकारी आदिवासियों को आश्वासन दिया कि तीन दिनों के अन्दर सारे भुगतान पूरे किये जायेंगे।

भुगतान न होने के कारण 10 मार्च को एक बार फिर मजदूर प्रशासन से मिले लेकिन कोई जवाब नहीं मिला। आदिवासियों ने गिरफ्तारी की मांग की। बौखलाए हुए प्रशासन ने उन्हें एक बार फिर आश्वासन दिया कि उनके भुगतान की प्रक्रिया चालू है। इसके दो हफ्ते बाद भी भुगतान न होने से परेशान मजदूर धरने पर बैठ गये। 9 अप्रैल को 8 गांवों के कुछ मजदूरों का भुगतान पूरा हुआ परन्तु 16 गांवों के मजदूरों का भुगतान अभी भी बाकी है। 10 अप्रैल को धरने पर बैठे आदिवासियों ने प्रशासन एवं राज्य सरकार पर सवाल उठाये परंतु प्रशासन भाग खडा हुआ और अब मजदूरों से मिलने को भी तैयार नहीं है। केंद्र सरकार द्वारा नरेगा की राशि समय पर राज्य सरकारों तक नहीं पहुँचाने के कारण हजारों मजदूरों को कठिनाइयां झेलनी पड़ रही हैं। नरेगा के भरोसे ही हजारों ग्रामीण मजदूर शहरी पलायन से बचने की कोशिश करते है परन्तु हर साल नरेगा के लिए आवंटित राशि उसके काम के अंतर्गत तय बजट से कम ही आवंटित की जाती है।

दो दिवसीय महिला संगोष्ठी संपन्न

बनवासी सेवा आश्रम के विचित्रा महा कक्ष में 11 अप्रैल को गांधी के 150वी जयंती वर्ष और कस्तूरबा गांधी जयंती को लेकर आयोजित दो दिवसीय महिला संगोष्ठी सम्पन्न हुई। मुख्य अथिति शिक्षा विशेषज्ञ प्रतिभा जायसवाल ने कहा कि महिलाओं को शिक्षित होने की जरूरत है। जब तक शिक्षा में गुणवत्ता नही आएगी तब तक उसका महत्व समझना मुश्किल होगा। उन्होंने कहा कि शिक्षा प्रबंध समिति को मजबूत बनाने के लिए निगरानी रखें और घर मे बच्चों को पढ़ने के लिए प्रेरित करें। लोक स्वराज्य संस्थान सीतापुर के संरक्षक पी एन कल्कि ने कहा कि घर को विद्यालय और विद्यालय को कोचिंग सेंटर समझ कर पढ़ाई की जाए तो सफलता अवश्य मिलेगी। उन्होंने कहा कि समाज के 70 फीसदी लोग शिक्षा, स्वास्थ्य रोजगार की समस्या से जूझ रहे है।ऐसे लोग जीविका के आगे शिक्षा पर ध्यान नही दे पाते।आज जरूरत है कि समाज मे बराबरी लायी जाए। यह त्याग और उत्तम शिक्षा के जरिये ही संभव है। शुभा प्रेम ने ग़ांधी के सपनों के ग्राम स्वराज्य और नारी शक्ति की चर्चा के साथ क्षेत्र में प्रदूषण की समस्या और एन जी टी द्वारा दिये गए आदेश की जानकारी दी।कहा कि जब तक हम सब इसके प्रति जागरूक नही होंगे, केवल आदेश पारित होने से समस्या का हल नहीं निकलेगा। संचालन नीरा बहन ने किया।

–देवनाथ भाई

जालियांवाला बाग स्मृति दिवस मनाया गया

मदुरै गांधी म्यूजियम और तमिलनाडु सर्वोदय मंडल के संयुक्त तत्त्वावधान में जालियांवाला बाग हत्याकांड का शताब्दी वर्ष 13 अप्रैल को मदुरै में मनाया गया। इस अवसर पर के. नटराजन ने एक प्रदर्शनी का उद्घाटन किया। सर्वोदय कार्यकर्ताओं और स्वतंत्रता सेनानियों की उपस्थिति में डॉ. एम. पी. गुरुस्वामी और पूर्व प्रधानाचार्य डॉ. पोन्नू ने जालियांवाला बाग हत्याकांड की लोमहर्षक घटना के बारे में जानकारी दी। स्थानीय आकाशवाणी केन्द्र ने भी इस अवसर पर प्रसारण किया और विस्तृत जानकारी दी।

–एस. टी. राजेन्द्रन, मंत्री

गांधी-विचार स्नातकोत्तर डिप्लोमा में प्रवेश लें

विगत एकतीस वर्षों से संचालित गांधी विचार परिषद आगामी वर्ष 2019-20 के लिए एक वर्षीय पीजी डिप्लोमा कोर्स शुरू करने जा रहा है। जमनालाल बजाज द्वारा स्थापित इस इंस्टीट्यूट में प्रतिवर्ष गांधी विचार में पीजी डिप्लोमा का कोर्स कराया जाता है। उल्लेखनीय है कि यह संस्थान आवासीय है और यहां पढ़ने वाले छात्रों को परिसर में ही रहने की सुविधा भी दी जाती है। इस कोर्स में प्रवेश लेने के इच्छुक छात्र 30 मई 2019 से पहले डीन, इंस्टीट्यूट ऑफ गांधियन स्टडीज, गोपुरी, वर्धा-442001 (महाराष्ट्र) से संपर्क कर सकते हैं।

–भरत महोदय, निदेशक

वनाधिकार से वंचित आदिवासियों एवं वनवासियों पर राष्ट्रीय संगोष्ठी

वन अधिकार से वंचिंत आदिवासियों को सुप्रीम कोर्ट द्वारा बेदखल करने का जो आदेश हुआ है, उसपर सर्व सेवा संघ द्वारा 16 अप्रैल को गांधी शांति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली में एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित की गयी, जिसमें वनाधिकार के ऊपर कार्य कर रहे 11 राज्यों के 15 प्रतिनिधियों ने भाग लिया और सुप्रीमकोर्ट के आदेश एवं वनवासियों की चुनौती पर विस्तृत चर्चा की तथा भविष्य की रणनीति पर विचार किया। संगोष्ठी की अध्यक्षता सर्व सेवा संघ की पूर्व अध्यक्ष सुश्री राधा भट्ट ने किया तथा महादेव विद्रोही ने आगे की रणनीति तय करने के लिए सर्व सेवा संघ की ओर से कई सुझाव व प्रस्ताव रखे। आदित्य पटनायक के संयोजन में इस राष्ट्रीय संगोष्ठी में झारखण्ड से घनश्याम, छत्तीसगढ़ से गौतम वंद्योपाध्याय, ऑक्सफेम दिल्ली की ओर से शर्मिष्ठा घोष, अवार्ड के सुरेन्द्र कुमार, बंगाल से रहीमा खातून, असम से हरीश कुमार, दिल्ली से लक्ष्मी दास, अशोक शरण, कृष्णा बिष्ट, बिहार से चन्द्रभूषण और दिल्ली हाईकोर्ट के सीनियर वकील बिरजा महापात्र आमंत्रित थे।

सर्व विदित है कि 13 फरवरी 2019 के सुप्रीम कोर्ट के एक आदेश से 21 राज्यों में अनुसूचित जनजाति और अन्य पारंपरिक वन निवासी श्रेणियों से संबंधित 19 लाख, 39 हजार 231 लोगों के आवेदन को स्वीकृति न मिलने से उन्हें जंगल से बेदखल किया जायेगा। वन अधिकार अधिनियम-2006 के प्रावधानों के तहत 21 राज्यों के 41 लाख 98 हजार 793 आवेदनकारियों में से 19 लाख 36 हजार 201 वनवासियों के आवेदन को कोई कारण बताये बिना खारिज कर दिया गया। सुप्रीम कोर्ट ने 20 फरवरी को अपने लिखित आदेश में 27 जुलाई को अगली सुनवाई से पहले कार्रवाई करने और सभी राज्य सरकारों को 24 जुलाई तक हलफनामा दाखिल करने का निर्देश दिया। अदालत ने 27 जुलाई से पहले आदेश लागू करने की चेतावनी भी दी है।

इतनी बड़ी संख्या में सदियों से रह रहे ये आदिवासी तथा वनवासी शिक्षित या आर्थिक रूप से ठीक नहीं हैं। वे यह नहीं जानते कि उन्हें अपने दावों के साथ कौन से साक्ष्य प्रस्तुत करने हैं। अदालत के निर्णय और उसके बाद भारत सरकार के अनिर्णय की स्थिति से उत्पन्न वनवासी समाज के हालात पर सर्व सेवा संघ ने संगोष्ठी में अपनी चिन्ता व्यक्त की।

संगोष्ठी में उपस्थित प्रतिनिधियों में, सुश्री राधा बहन, महादेव भाई, गौतम वंद्योपाध्याय, आदित्य पटनायक तथा बिरजा महापात्र ने अपने-अपने राज्यों में विकास के नाम पर बनने वाले बांधों, माइनिंग, फोरलेन आदि के चलते अधिग्रहीत की जा रही वनभूमि के खिलाफ चल रहे अभियानों और आंदोलनों के विषय में विस्तृत जानकारी दी। उन्होंने बताया कि इन परियोजनाओं के कारण आदिवासी वनभूमि से बेदखल किये जा रहे हैं। संगोष्ठी के अंत में सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष महादेव भाई ने सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के बाद वनवासियों के हक में संघर्ष करने के लिए समधर्मी संगठनों के साथियों की एक राष्ट्रीय समिति बनाने का प्रस्ताव दिया। इस समिति में महादेव भाई, लक्ष्मीदास, अरविन्द अंजुम, घनश्याम, गौतम वंद्योपाध्याय, मोहन हीरा भाई, राधा बहन, चन्दन पाल, भंवर सिंह, राजगोपाल, बिरजा महापात्र, आदित्य पटनायक तथा राकेश दीवान के नाम शामिल किये गये। आपसी संवाद के बाद सुप्रीम कोर्ट में पुनर्विचार याचिका दाखिल करने की जिम्मेदारी लक्ष्मीदास जी को दी गयी। **–आदित्य पटनायक**

किसानों पर पेप्सीको का कहर

गुजरात के साबरकांठा जिले में वडाली तालुका के 4 किसानों पर पेप्सी को इंडिया होल्डिंग्स ने केस किया है। कंपनी का कहना है कि इन किसनों ने गैरकानूनी ढंग से रजिस्टर्ड किस्म के एफसी-5 आलू की खेती की है। पेप्सी को इंडिया ने प्रत्येक किसान पर 1 करोड़ 5 लाख का दावा किया है। गांवों में किसानों का एक दूसरे से बीज लेना सामान्य बात है। इन किसानों ने भी ऐसा ही किया। कंपनी का कहना है कि बीज हमसे खरीदो और हमें ही बेचो। किसान कहते हैं कि यदि आलू का आकार 45 मिमी से कम है तो कंपनी उसे नहीं लेती। विश्व व्यापार संगठन के नये नियमों के अनुसार किसान इन बचे हुए आलुओं को जो कुल उत्पादन का 15 से 20 प्रतिशत होता है, बेच नहीं सकता। भारत में पेटेन्ट कानून के अन्तर्गत सजीव वस्तुओं का पेटेन्ट नहीं हो सकता। पाठकों को याद होगा कि पश्चिमी देशों ने नीम, तुलसी सहित अनेक चीजों का पेटेन्ट करा लिया था। वन्दना शिवा एवं अन्य कुछ लोगों ने इसके खिलाफ अदालत का दरवाजा खटखटाया और उनकी जीत हुई। अब भारत सरकार को तय करना है कि भारत में भारत का कानून चलेगा या विश्व व्यापार संगठन का।

इस घटना से लगने लगा है कि यदि समय रहते इस कदम को नहीं रोका गया तो वह समय दूर नहीं जब बहुराष्ट्रीय कंपनियां जो कहेंगी वही खाना, वही पीना और वही पहनना पड़ेगा।

आज युनियन जैक के बदले भले ही तिरंगा झंडा लहरा रहा हो पर हम पतंग से लेकर गणेश की मूर्ति तक चीन से आयात कर रहे हैं। यह हमें एक नयी गुलामी की ओर ले जायेगा। चेतने और स्वदेशी की ओर लौटने से ही आजादी की रक्षा हो सकेगी।

–महादेव विद्रोही

जयजगत-2020 यात्रा

जयजगत-2020 एक प्रतिष्ठित वैश्विक अभियान है,इसका उदेश्य करोडों गरीब, वंचित और असमानता के शिकार लोगों के जीवन में न्याय और शांति स्थापित करना है।

जयजगत पदयात्रा गांधी विचारों के साथ 2 अक्टूबर 2019 से शुरू होकर एक वर्ष लगातार चलते हुए जिनेवा पंहुचेगी। पदयात्रा इस दौरान 14 देशों की 10,000 किलोमीटर दूरी का सफर तय करेगी। यात्रा के रास्ते में आमजन की आवाजों एवं संदेशों को समझने के लिए विभिन्न पड़ावों पर संवाद आयोजित किये जायेंगे। इस आयोजन का उद्देश्य है कि संयुक्त राष्ट्र का नेतृत्व वंचितों ओर जमीनी कार्यकर्ताओं की बात आवश्यक रुप से सुने।

जय जगत की भरतीय टीम और अन्तराष्ट्रीय नेतृत्व की ओर से हम आपसे निवेदन करते हैं कि आप जय जगत 2020 को आर्थिक सहयोग दें। इस अभियान का बजट 3.7 करोड रुपए है। ये बजट भोजन, ठहरने की व्यवस्था, स्वास्थ्य बीमा और वीजा के अनुमानित खर्चों पर अधारित है।

भुगतान हेतु एकता फाउंडेशन ट्रस्ट की जानकारी।

Axis bank,
MP. Nagar, Bhopal,
Acct : 44010100175708
IFSC Code : UTIB0000044
www.jaijagat2020.org

आप सभी के सहयोग व सहभागिता से जलवायु संकट एवं युद्ध हिंसा के मुद्दे से निपटने में आसानी होगी। हमें विश्वास है कि यही मौका है, हम बदलाव ला सकते हैं।

–राजगोपाल पी.वी. एवं जिल कार हैरिस
जयजगत अन्तराष्ट्रीय अभियान

'Sarvodaya Jagat' Hindi Fortnightly
Registered under RNI No. 35495/78, Postal Registration No. VSI-(E) 04, Valid upto 31 December 2020
Issued by S.S.P.O. Varanasi (East Division)

कविता

श्रमधारा अपनी मंज़िल से परिचित है!

❑ महेन्द्र भटनागर

टिकी नहीं है
शेषनाग के फन पर धरती!
हुई नहीं है उर्वर
महाजनों के धन पर धरती!
सोना-चांदी बरसा है
नहीं खुदा की मेहरबानी से,
दुनिया को विश्वास नहीं होता है
झूठी ऊलजलूल कहानी से!

सारी खुशहाली का कारण,
दिन-दिन बढ़ती
वैभव-लाली का कारण,
केवल श्रमिकों का बल है!
जिनके हाथों में
मजबूत हथौड़ा,
हँसिया,
हल है!
जिनके कंधों पर
फौलाद पछाड़ें खाता है,
सूखी हड्डी से टकराकर
टुकड़े-टुकड़े हो जाता है!

इन श्रमिकों के बल पर ही
टिकी हुई है धरती,
इन श्रमिकों के बल पर ही
दीखा करती है
सोने-चांदी की 'भरती'!

इनकी ताकत को
दुनिया का इतिहास बताता है!
इनकी हिम्मत को
दुनिया का विकसित रूप बताता है!
सचमुच, इनके कदमों में
भारीपन खो जाता है!
सचमुच, इनके हाथों में
कूड़ा-करकट तक आकर
सोना हो जाता है।

इसीलिए
श्रमिकों के तन की कीमत है!
इसीलिए
श्रमिकों के मन की कीमत है!

श्रमिकों के पीछे दुनिया चलती है;
जैसे पृथ्वी के पीछे चांद
गगन में मंडराया करता है!
श्रमिकों से
आंसू, पीड़ा, क्रंदन, दुःख-अभावों का जीवन
घबराया करता है!
श्रमिकों से
बेचैनी और' बरबादी का अजगर
आंख बचाया करता है!

इनके श्रम पर ही निर्मित है
संस्कृति का भव्य-भवन,
इनके श्रम पर ही आधारित है
उन्नति-पथ का प्रत्येक चरण!

हर दैविक-भौतिक संकट में
ये बढ़कर आगे आते हैं,
इनके आने से
त्रस्त करोड़ों के आंसू थम जाते हैं!
भावी विपदा के बादल फट जाते हैं!
पथ के अवरोधी-पत्थर हट जाते हैं!
जैसे विद्युत-गतिमय-इंजन से टकरा कर
प्रतिरोधी तीव्र हवाएं
सिर धुन-धुन कर रह जाती हैं!
पथ कतरा कर बह जाती हैं!

श्रमधारा कब
अवरोधों के सम्मुख नत होती है?
कब आगे बढ़ने का
दुर्दम साहस क्षण भर भी खोती है?
सपनों में
कब इसका विश्वास रहा है?
आँखों को मृग-तृष्णा पर
आकर्षित होने का
कब अभ्यास रहा है?

श्रमधारा
अपनी मंजिल से परिचित है!
श्रमधारा
अपने भावी से भयभीत न चिन्तित है!

श्रमिकों की दुनिया बहुत बड़ी!
सागर की लहरों से लेकर
अम्बर तक फैली!
इनका कोई अपना देश नहीं,
काला, गोरा, पीला भेष नहीं!
सारी दुनिया के श्रमिकों का जीवन,
सारी दुनिया के श्रमिकों की धड़कन
कोई अलग नहीं!
कर सकती भौगोलिक सीमाएं तक
इनको विलग नहीं! ❑

अभिनेता और श्रमिक

❑ ओसिप मांदेल्श्ताम

जलक्रीड़ा प्रेमियों के क्लब के अहाते में
जहां ऊंचे हैं मस्तूल, लटके हैं सुरक्षा-पहिए
समुद्र के पास दक्षिण के आकाश के नीचे
बन रही है खुशबूदार लकड़ी की दीवार।

यह खेल है जो खड़ी कर रहा है दीवार।
काम करना भी क्या एक तरह का खेल नहीं?
चौड़े मंच के ताजा तख्तों पर
कितना रोमांचक है पांव रखना पहली बार!

दुनिया की डेक पर खड़ा अभिनेता भी है पोतचालक,
लहरों पर बना है उसका घर।
स्नेह भरे हाथों के भारी हथौड़े से
नहीं डरी है वीणा कभी आज तक।

कलाकार का कथन होता है श्रमिक का भी कथन;
सच कहें तो हमारा सत्य भी होता है एक ही!
जिस उद्देश्य के लिए जीता है मिस्त्री
उसी के लिए जीता है सर्जक भी।

धन्यवाद सबका! रात-दिन मिलकर
बनाते रहे हम, लो, अब तैयार हुआ घर।
सख्त भंगिमा वाले इस मुखौटे के भीतर
छिपाये होता है मजूर आने वाले समय की विनम्रता।

कविता की प्रसन्नचित्त पंक्तियों में से महक आती है समुद्र की
खेल दिये गये हैं रस्ते पोत के-शुभयात्रा!
एक साथ प्रस्थान करो भविष्य की सुबहों की ओर
अभिनेता, ओ श्रमिक, दोनों के लिए मना है आराम करना! ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार।